ISSN 2582-0133

साइकिल

बच्चों का दुमहिया

वर्ष 3 अंक 2

जून - जुलाई 2020

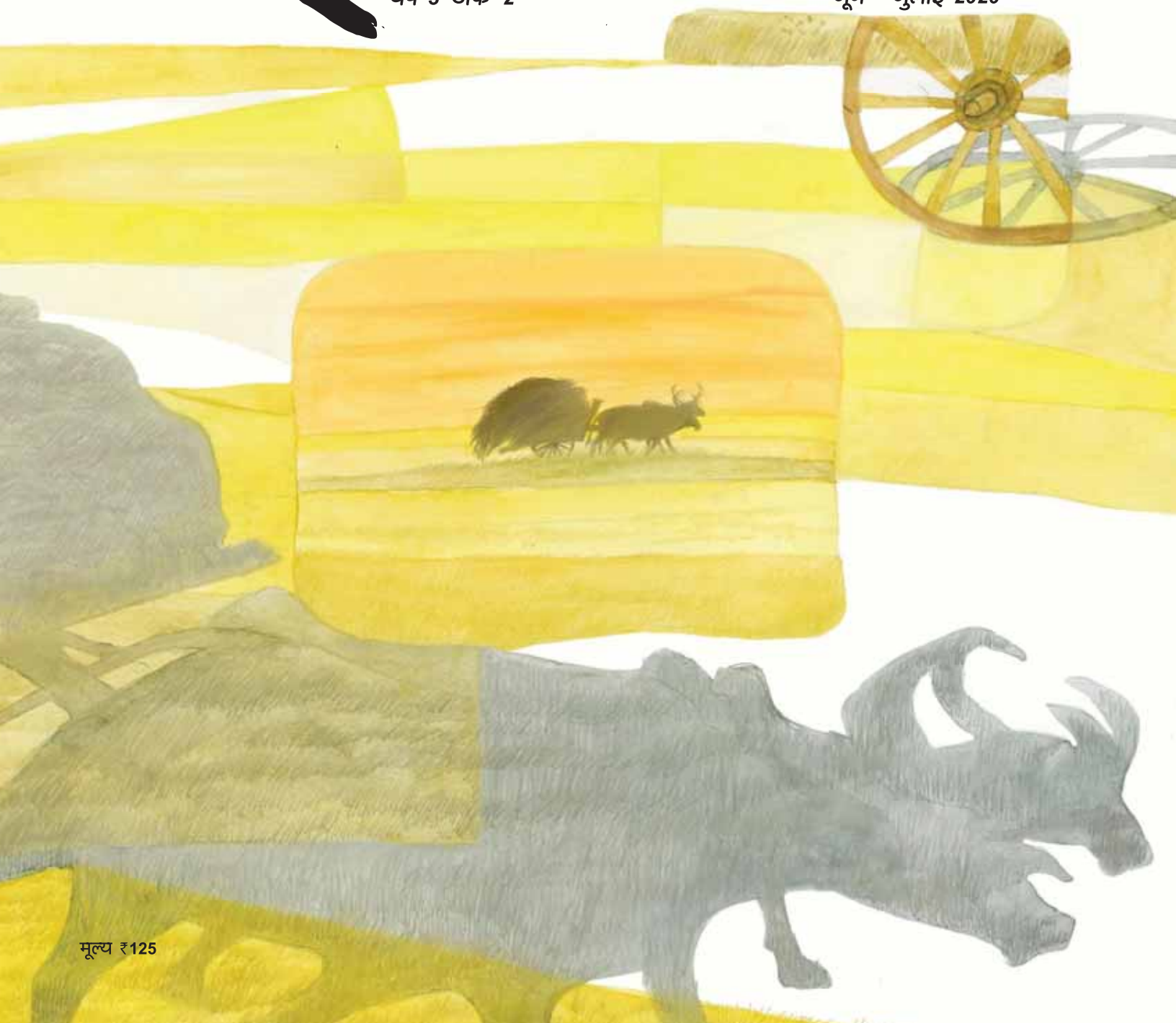

मूल्य ₹125

साइकिल

बच्चों का दुमहिया

वर्ष 3 अंक 2 जून - जुलाई 2020

सम्पादन - सुशील शुक्ल, शशि सबलोक
सहायक सम्पादक - निधि गौड़, चन्दन यादव

डिज़ाइन - तापोशी घोषाल
आवरण चित्र - तापोशी घोषाल

वितरण - राजेन्द्र परमार, अनीता शर्मा

अवधि	अंक	सदस्यता दर (पंजीकृत डाक शुल्क सहित)
एक साल	6	रु. 750
दो साल	12	रु. 1500
तीन साल	18	रु. 2250
		एक प्रति - रु. 125

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust नई दिल्ली के नाम देय
ऑनलाइन ट्रांसफर -
आई.सी.आई.सी.आई बैंक लिमिटेड, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 630005009526 IFSC Code ICIC0006300
में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
www.ektaraindia.in/order-publication/

भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

इकतारा - तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र
ई-1/212, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016
फोन - 0755-2446002/4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल - cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट - www.ektaraindia.in

पहाड़ को चिट्ठी लिखने के पहले की चिट्ठी 04
बिल्लीनामा 06
नैतिक शिक्षा 10
है भी, नहीं भी! 12
एक चोर की छठी रात 13
छुपी हुई चीज़ें 16
नन्दू का जुकाम 18
सिकन्दर का पत्र अपने गुरु अरस्तू के नाम 20
कोतवाल 22
देख आएँ ये अपरम्पार 25
समानता 26
माथापच्ची 29
कुन फया कुन 30
हमने जामुन खाए 33
नव पाषाण युग 34
चौक-सी 36
एक खत 38
धूप 40

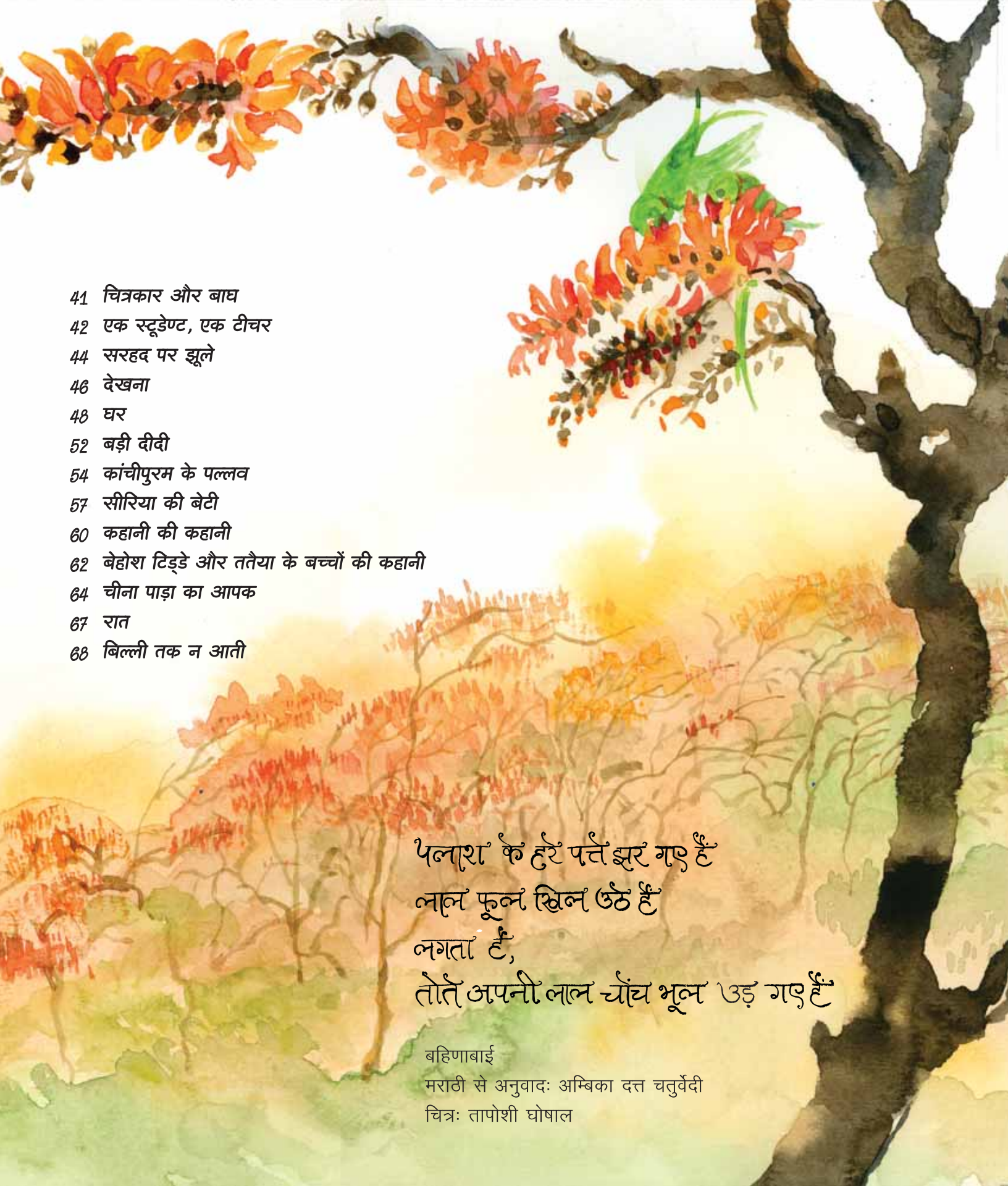

41 चित्रकार और बाघ
42 एक स्टूडेण्ट, एक टीचर
44 सरहद पर झूले
46 देखना
48 घर
52 बड़ी दीदी
54 कांचीपुरम के पल्लव
57 सीरिया की बेटी
60 कहानी की कहानी
62 बेहोश टिड्डे और ततैया के बच्चों की कहानी
64 चीना पाड़ा का आपक
67 रात
68 बिल्ली तक न आती

पलाश के हरे पत्ते झर गए हैं
लाल फूल खिल उठे हैं
लगता है,
तोते अपनी लाल चोंच भूल उड़ गए हैं

बहिणाबाई
मराठी से अनुवादः अम्बिका दत्त चतुर्वेदी
चित्रः तापोशी घोषाल

पहाड़ को चिट्ठी लिखने के पहले की चिट्ठी

विनोद कुमार शुक्ल
चित्रः तापोशी घोषाल

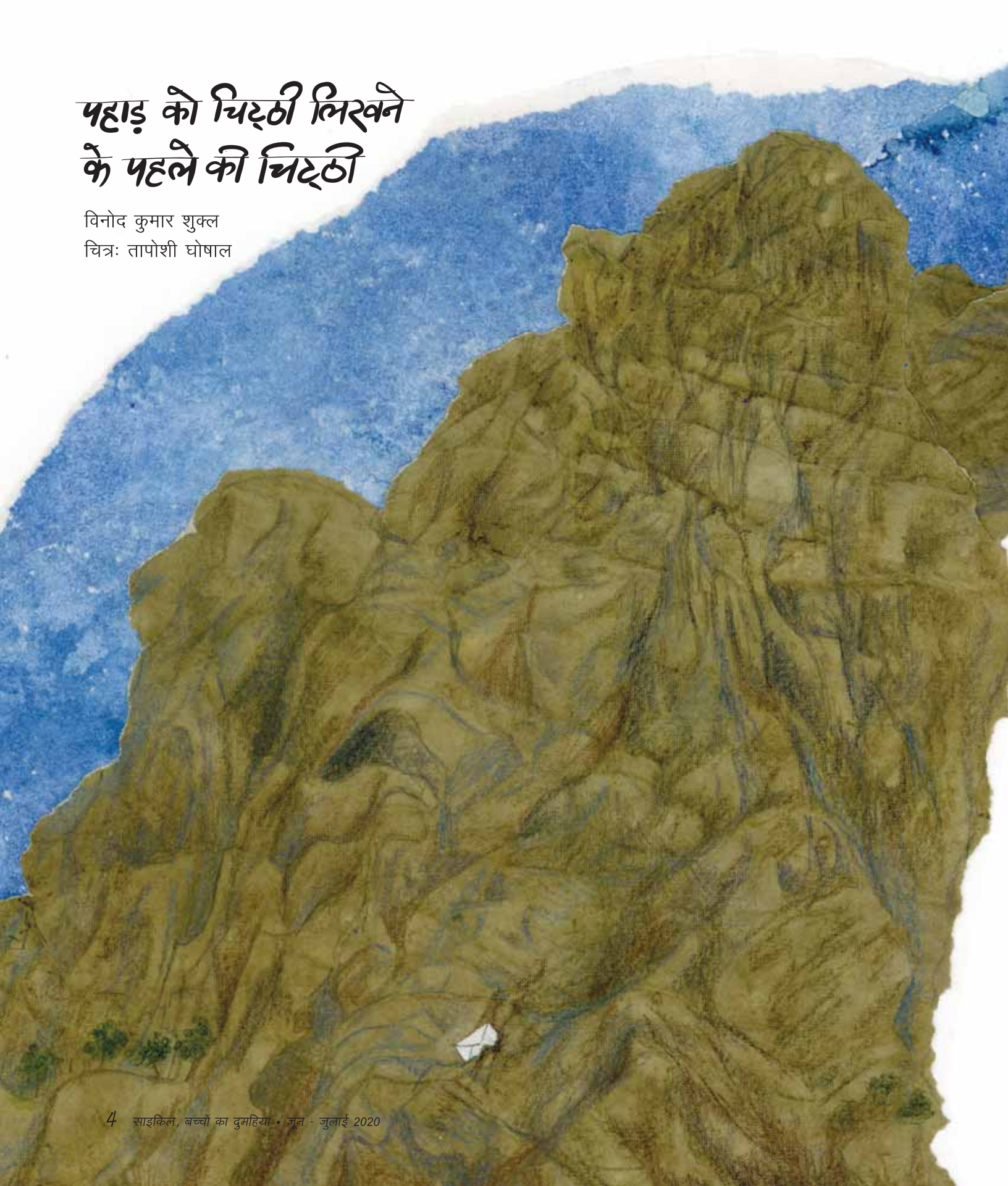

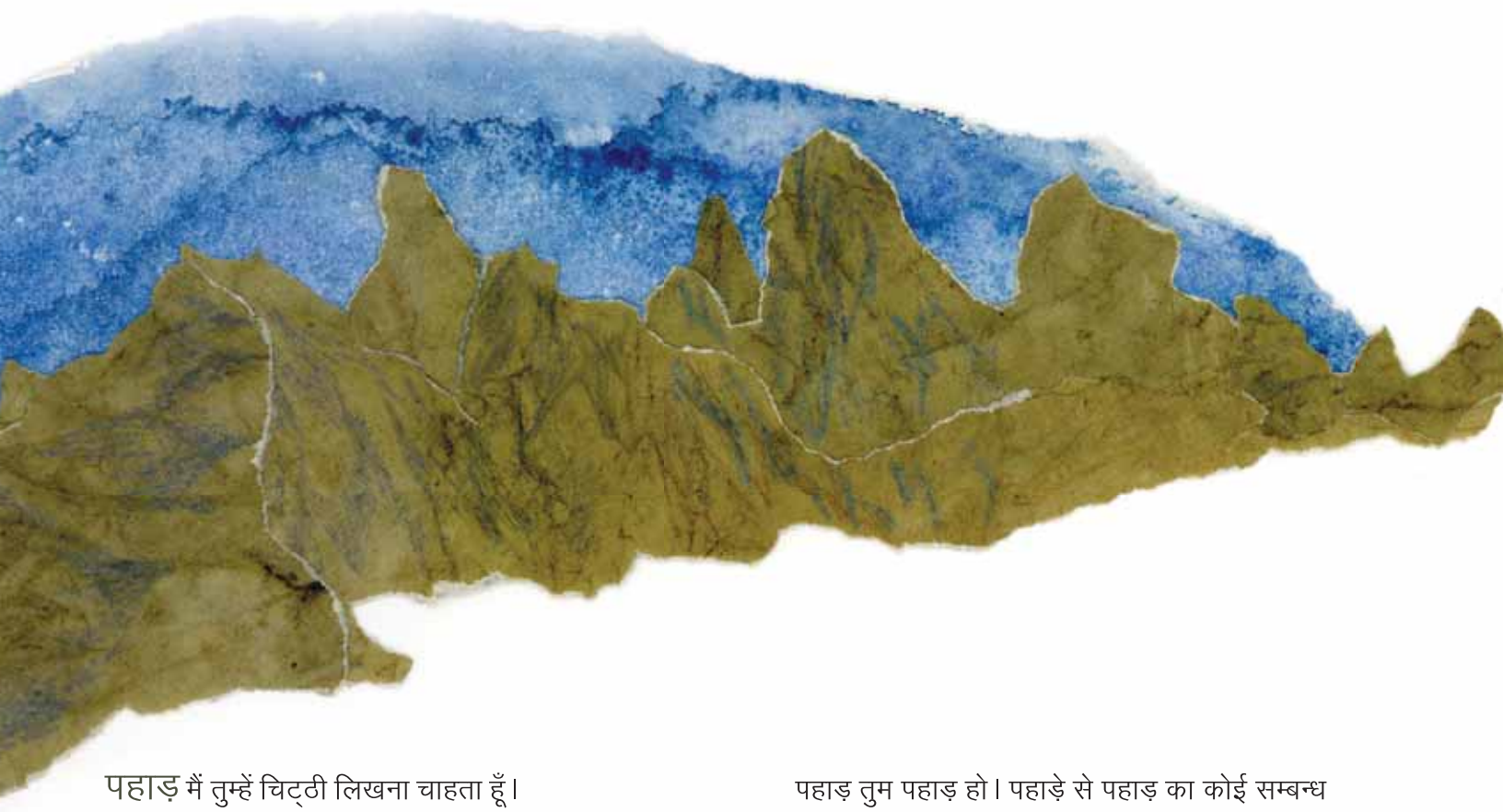

पहाड़ मैं तुम्हें चिट्ठी लिखना चाहता हूँ।

तुम बहुत दूर, ऊँचे और फैले हुए हो। पोस्टमैन तुम्हें चिट्ठी कैसे देगा? तुम बहुत बड़ी जगह में हो। किस जगह देगा? नीचे देगा या चढ़कर देगा? बहुत ऊपर शिखर तक नहीं जा सकेगा। उसे बहुत चिट्ठियाँ बाँटनी होती हैं। पर क्या तुम्हें पढ़ना आता है? क्या लिखना भी आता है? कहीं ऐसा तो नहीं पोस्टमैन को मेरी चिट्ठी पढ़कर सुनानी हो? जवाब भी लिखाना हो?

हो सकता है पोस्टमैन चिट्ठी नीचे किसी चट्टान के ऊपर रख दे और तुम्हारा एक छोटा पत्थर उठाकर चिट्ठी पर रख दे ताकि हवा से ना उड़े। अगर पानी गिर गया तो चिट्ठी भीग जाएगी। शायद चिट्ठी बड़ी चट्टान के नीचे खोह में रख दे। पहाड़ तुम जहाँ हो वहीं हो। और वहीं दूर से भी दिख जाते हो। तुम कहाँ हो यह मालूम हो जाता है। दूर से तुम्हारा दिखना तुम्हारा बताना है कि तुम यहाँ हो। और दूर से ही दिखना तुम्हारा ज़ोर से चिल्लाना है कि दूर तक सुनाई दे। पर तुम बोलते नहीं। सुनते भी नहीं। तुम्हारे कान होते तो बहुत बड़े होते। और मैं दूर घर की खिड़की से तुमसे बातें करता।

पहाड़ तुम पहाड़ हो। पहाड़े से पहाड़ का कोई सम्बन्ध है क्या? मुझे 19 का पहाड़ा याद नहीं होता। जब छुट्टी के दिन होते हैं तब तुम मुझे घूमने में याद आते हो कि सब चलेंगे एक दिन। छुट्टी के दिन भी पहाड़ा याद करना पड़ता है। मैं एक दिन तुम्हारे पास आऊँगा और तुमसे एक पत्थर उठा कर अपने घर लाऊँगा। इस तरह तुम्हें अपने घर, साथ रख सकूँगा। फिर आऊँगा ताकि तुम्हारा पत्थर लौटा दूँ। अब मैं तुमको देखता हूँ तो मुझको लगता है तुम मुझको भी देखते होगे। वहाँ तुम हो। और रहते हो तो खुले में रहते हो। या यह ठीक होगा कि पहाड़ हो और पहाड़ में रहते हो। या खुद अपने में रहते हो। तुमने अपने लिए गुफा नहीं बनाई जिसके अन्दर तुम रह सको। बरसात धूप से बच सको। पर तुम्हारे अन्दर गुफा है क्या? गुफा तुम्हारा मन है। मैं ज़ोर-ज़ोर से पढ़ता हूँ तो सब कहते हैं मन लगाकर मन में पढ़ो। मैं अपने मन में पढ़ नहीं सकता। तुम्हारे मन में आकर पढ़ सकता हूँ क्या?

भाग- 1

बिल्ली नामा

कहानीः वरुण ग्रोवर
चित्रः राजकुमारी

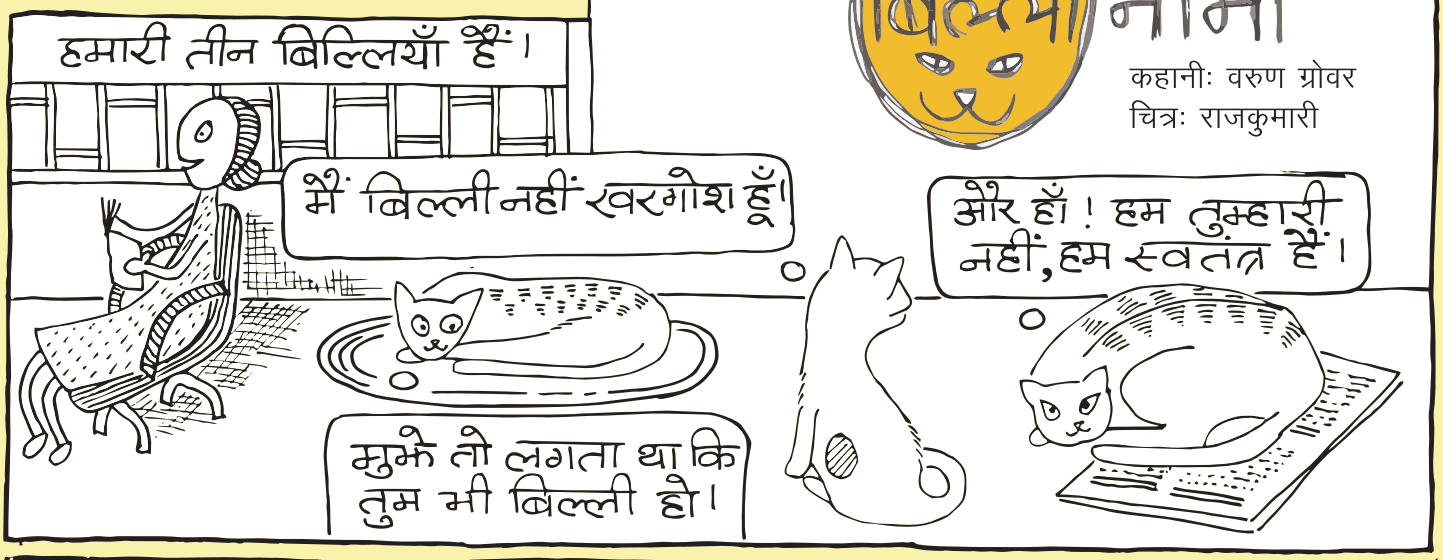

अब मुझे जाना होगा देर हो रही है।

ऐसा लग रहा है कि इसकी माँ कहीं चली गई है इसे छोड़कर।

म्याँ म्याँ

देखिए हमारे एक साथ 5-6 बच्चे होते हैं। और हम उनमें से 2 या 3 को ही खाना खिला सकते हैं. जिनके बचने की उम्मीद ज़्यादा होती है मतलब जो शुरू से ज़्यादा स्वस्थ हैं।

वरुण तो काम पर चला गया और

आ जा छुटकू, आजा!

जी आप कौन?

मिशन बिल्ली मुझ अकेले के सिर पड़ा।

अच्छा! तौलिया न सही बाल्टी में आ जा

काहे को?

???

!!!

मैं तेरे पाँव पड़ती हूँ आ जा यार!

हमला!

आह! क्या हवा!
अब चलो यहाँ से...
माँ
अब आया ऊँट पहाड़ के नीचे..

म्याँ
म्याँ
म्याँ
ये मुझसे डर रही हैं शायद। ये दूध यहीं गिरा देती हूँ तो पी ही लेगी।
फिर याद आई –मेरी दोस्त पल्लवी..
तेरे पास तो दो बिल्लियाँ हैं न? मदद कर दे यार! वो तो बाहर ही नहीं निकल रही।
ये सब कब हुआ? रुक, मैं आती हूँ।
हाय! सो क्यूट!
हाय! सो दुष्ट!
हॉऽऽऽऽऽऽऽ
बाप रे! बस देखने में छोटी है पर साँप जैसा फुँफकारती है।
हमें साँप से डर लगता है। बल्कि साँप जैसी कोई भी चीज़ जैसे खीरा भी हमें डराता है और अचानक हम स्प्रिंग की तरह उछल पड़ते हैं।
पल्लवी आई और उसकी पसंद का खाना भी लाई।
लो ये खाओ..
क्या ये कोई चाल है?
पर अब खाने को कौन मना करे!

जारी...

नैतिक शिक्षा

नेहा बहुगुणा
चित्रः प्रिया कुरियन

कमल के हाथ पसीने-पसीने हुए जा रहे थे और बाकी बच्चे सुर में सुर मिलाते हुए गा रहे थे - अंब विमल मति दे....।

'दे...' पर इतना ज़ोर था मानो आज ही दिमाग में सब कुछ भर लिया जाएगा। पर कमल को आज यह 'दे...' कुछ ज़्यादा ही खल रहा था। दिक्कत यह थी कि इस शोर के चलते वह अपनी कहानी भूलता जा रहा था।

रोज़ सुबह की सभा में किसी भी एक बच्चे को कहानी सुनानी होती थी। ज़रूरी था कि कहानी में नैतिक शिक्षा हो। और वो नई हो। कम से कम इतनी नई तो हो ही कि पिछले एक हफ्ते में किसी ने उसे सुना न हो।

कमल ने "सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी" की कहानी याद की थी। उसे कहानी तो पूरी याद थी, लेकिन स्कूल आने, प्रार्थना गाने और लगातार रटते रहने से वह उसकी 'नैतिक शिक्षा' भूल गया था।

"इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि सोने के अण्डे खाने चाहिए।" कमल बड़बड़ाए जा रहा था कि आवाज़ आई। "कमल।"

कमल ने आँखें खोलीं। उसके कक्षा अध्यापक उसे बड़ी-बड़ी आँखों से देखे जा रहे थे। वो उठा। शर्ट ठीक की। नाक को हाथों से मला और सिर झुका कर सबके सामने खड़ा हो गया ।

उसके हाथ पीछे बँधे हुए थे। उसने सिर उठा कर एक झलक सामने देखा। कुछ बच्चे उसे घूरे जा रहे थे। कुछ नाक खोदने में मस्त थे। कुछ नींद के झोंकों से अचानक बाहर आकर इधर-उधर देख रहे थे। पिछली सीट पर बैठनेवाले उसके दोस्त भवें नचा-नचा कर उसे चिढ़ा रहे थे।

कमल ने तुरन्त उनसे नज़रें चुरा लीं। और नीचे देखने लगा। उसके मौजे कितने गन्दे हो गए हैं। बाएँ पैर का अँगूठा तो बाहर झाँकने ही वाला है। कमल ने तुरन्त पंजे सिकोड़ लिए। कक्षा अध्यापक ने कमल की पीठ पर हलकी-सी थाप दी ही थी कि वह सिर झुकाए, हाथ बाँधे शुरू हो गया -

"एक बार एक बुढ़िया थी। उसके पास एक सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी थी।"

उसके इतना कहते ही बच्चे हँस पड़े। और थोड़ा और ध्यान से उसकी ओर देखने लगे। कमल की कहानी गले में ही अटक गई, "अरे! आगे बोलो!" अध्यापक की आवाज़ आई। किसी तरह बुढ़िया और मुर्गी की कहानी को कमल ने पसीने के साथ बहा दिया। बच्चे हँसते जा रहे थे।

अन्त में, कहानी से मिलने वाली शिक्षा सुनानी थी। कमल ने आँखें बन्द कर याद करने की कोशिश की... इस कहानी से हमें क्या शिक्षा मिलती है? क्या मिलती है? क्या शिक्षा मिलती है?

कमल की आँखें मिचमिचाने लगीं। पीछे बँधे हाथ एक-दूसरे को खुजलाने लगे। तभी शिक्षक ने कमल के कँधे पर हलके से हाथ रखा और उसके मुँह से निकल पड़ा, "इस कहानी से हमें शिक्षा मिलती है कि हमें अपनी मुर्गी नहीं मारनी चाहिए।"

सब ज़ोर-से हँस पड़े। और वो ज़ोर-से आ रही सु सु को रोकने की नाकामयाब कोशिश करने लगा।

है भी, नहीं भी!

प्रिया कुरियन

हमारी दुनिया खूबसूरत पेड़-पौधों, पत्तियों, फूलों, बीजों, कितने ही आकारों, रंगों, रूपों से भरी हुई है। यह खूबसूरती नज़रंदाज़ रहती है। चलो, इस निराली दुनिया को देखते हैं। इसे तलाशते हैं। रोज़ बस चन्द मिनट लेकर। अपने आसपास फैली पड़ी दुनिया को देखो। जो दिखता है वह उतना भर नहीं है। उसमें एक जादू और है। जो एकदम सामने नहीं आता।

तुम इस चित्र में इस्तेमाल हुई फल्ली जैसी दिखने वाली चीज़ को जानते हो?

अगर तुम इस तरह कोई चित्र बनाओ तो हमें भेजना, हम उसे साइकिल में छापेंगे। पता तुम साइकिल के पेज-2 पर देख सकते हो।

एक चोर की छठी रात

अरुण कमल

चित्रः अतनु राय

सुबह जगने में देर हो गई। बाहर निकला तो तेज़ धूप में कल की बात सब झूठ लग रही थी। लेकिन दस रुपए का नोट मेरी पैंट की जेब में था। पता नहीं उस बेचारे को क्या हुआ! गिरा तो था, कहीं पकड़ा न गया हो। अभी सोच ही रहा था कि घर के भीतर से चाची चिल्लाती हुई निकलीं, "कल से अगर देर से आया तो इस कोठरी में अपना ताला लगा दूँगी। बहुत सह लिया। यह शरीफों का घर है।"

मैं चुप बैठा रहा। जानता हूँ कि मेरे माँ-बाप नहीं हैं, तो चाची-चाचा मेरी यह अकेली कोठरी भी हड़पना चाहते हैं। कभी एक शाम रोटी को नहीं पूछा। फिर गरजीं, "अबकी घर से निकाल दूँगी। ये नहीं कि कोई काम पकड़ ले। बस देह डुलाते फिरते हो। बाहर करके ताला मार दूँगी। देखते हैं कौन बचाता है।"

मैं चुप सुनता रहा। पहले सोचता था भगवान बचाएँगे। एक बहुरूपिये को मैंने सच में शिवजी समझ लिया था। उसके गले में साँप भी था। "मेरी माँ को वापस ला दो भगवान।" मैंने कहा और उसने मेरा माथा सहलाया। एक सिक्का दिया और बोला, "चलोगे मेरे साथ?" लेकिन सचमुच कौन बचाएगा? यही सब सोचता उठा और बाज़ार की तरफ चला। एक दुकान पर कचौड़ियाँ खाईं और वही

नोट दे दिया। तभी किसी ने पीछे से पुकारा, "यह नोट नहीं चलेगा। बीच से फटा है।" दुकानदार गुस्से में था। "लेकिन मेरे पास तो यही है।" वह मुझे मारने दौड़ा। मैं ठिठक गया। तभी किसी ने उसे रोका, "ये लो अपने पैसे।" मैंने मुड़कर देखा। लगा, ये तो स्कूल के मास्टर साहब हैं। मैं उनके पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ देर बाद वह पीछे मुड़े, "क्या है?" "लाइए, मैं आपका थैला ले लूँ।" थैले में सब्ज़ियाँ वगैरह थीं। "नहीं, ठीक है।" फिर मुझे दे दिया। "पढ़ते हो?' "नहीं, छोड़ दिया। काम खोज रहा हूँ।" "चलो मेरे साथ।"

उनके स्कूल में मुझे पानी पिलाने, चाय लाने और घण्टी बजाने का काम मिल गया। वे बोले, "जब मन हो किसी भी क्लास में बैठ जाना। आगे देखेंगे।" और मैंने खूब ज़ोर-से घण्टी बजाई। जाकर उन्हीं की क्लास में पीछे बैठ गया। वह पढ़ा रहे थे। "एक दिन ऐसा भी होगा कि सारे पर्वत सिकुड़ कर छोटे हो जाएँगे। नदियाँ सूख जाएँगी। पानी उड़ जाएगा। आसमान काला पड़ जाएगा। और चन्द्रमा के बीचोंबीच एक बड़ा छेद बन जाएगा - होल।" "इस पढ़ाई में तो मज़ा है।" मैंने सोचा। दोपहर को खाना भी मिला। लेकिन मन ऊबने लगा। इतना ऊबा कि चार बजे के पहले ही घण्टी बजा दी। मास्टर साहब ने बुलाया। एक कमरे में ले गए। "देखो, सच-सच बतला दो। इस लड़के की घड़ी गायब हो गई है। बतला दो कहाँ रखी है?" "मैं नहीं जानता। आप देख लीजिए। उधर तो गया भी नहीं।" "सच बोलो, कहाँ छिपाई है?" और किसी ने ज़ोर-से तमाचा मारा।

एक बार फिर स्कूल छूट गया। कनपटी अभी भी दर्द से झनझना रही थी। जो करना चाहा वो हुआ नहीं। जो नहीं किया उसकी सज़ा मिली। हमेशा सबसे कमज़ोर पर ही शक क्यों? बहुत दुख हुआ। मैं जाकर अपनी कोठरी में लेट गया। खिड़की खोल दी। चाची फिर गरजीं, "आज बच गए। देखती हूँ कब तक बचते हो।" लगता है यह ठिकाना भी छिन जाएगा। यही सोच रहा था कि बाहर से सर्कस की प्रचार-गाड़ी "आज की रात सर्कस की आखिरी रात" बोलती गुज़री। और मैं उठ बैठा। कभी सर्कस नहीं देखा। लेकिन टिकिट? पहले चलते हैं, कुछ न कुछ हो जाएगा।

फिर वही मेले का मैदान। थोड़ा डर भी था, कहीं जादूगर मिल गया तो? मैं पीछे के रास्ते से मेले में घुसा और सर्कस के रंग-बिरंगे तम्बू के सामने पहुँच गया। आज आखिरी दिन था, इसलिए भीड़ कम थी। मैं बस ऊपर ताक रहा था कि किसी ने पीछे से कँधा पकड़ा। पुलिस? नहीं, यह तो वही मदारी था। दोनों कस के मिले। वो बोला, "आजकल यहीं काम करता हूँ। बन्दर भी यहीं है। चल भीतर।" अभी तमाशे में देर थी। देखा एक चौकी पर दो बौने जोकर लेटे हुए हैं। ऊपर आधे पर एक, निचले आधे पर दूसरा। लेकिन वे हँस नहीं रहे थे। मैंने मदारी से पूछा, "ये इतने खामोश हैं?" "हाँ, एक की माँ बीमार है बहुत।"

मदारी ने मुझे आगे गोल घेरे के पास एक स्टूल पर बिठा दिया। और सर्कस शुरू। इतने-इतने करतब। लेकिन सबसे ज़्यादा मज़ा दोनों जोकरों से आ रहा था। खूब मज़ा आया। खेल खतम होने पर एक जोकर, मदारी और मैं सबने साथ-साथ पाव-भाजी खाई और बाहर घूमने निकले। मदारी गा रहा था। मैं सीटी पर धुन बजा रहा था। जोकर ताली दे रहा था। रात थी। हम थे। हवा थी। चाँद था। चाँद के बीचोंबीच खोखल था – होल।

और हम तीनों गाने लगे। तारों भरी रात के सुनसान में अपनी हलकी आवाज़ भी तेज़ लगी। एक ट्रक की तेज़ हेडलाइट में हम चुप हो गए, फिर शुरू:

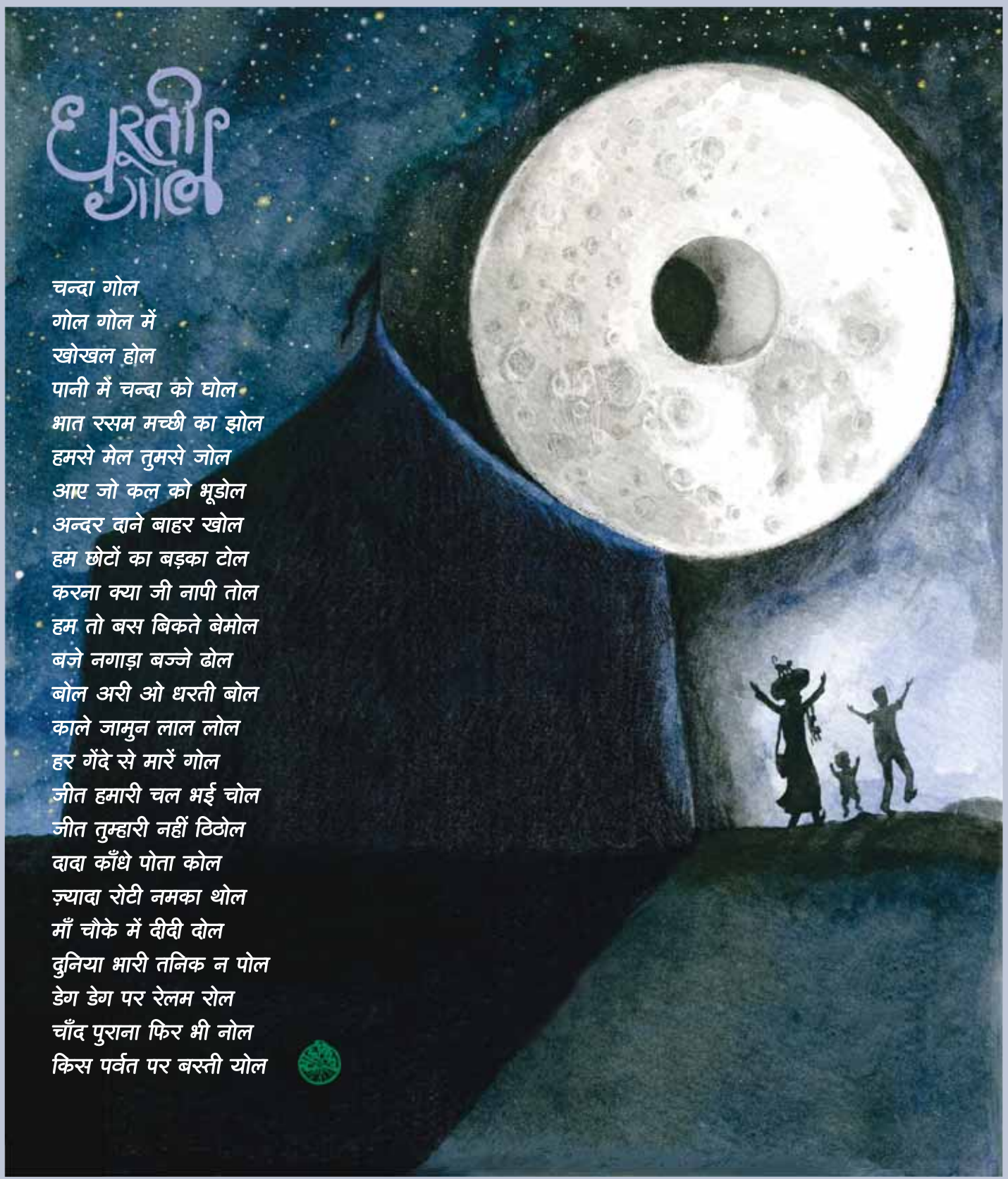
धरती गोल
चन्दा गोल
गोल गोल में
खोखल होल
पानी में चन्दा को घोल
भात रसम मच्छी का झोल
हमसे मेल तुमसे जोल
आए जो कल को भूडोल
अन्दर दाने बाहर खोल
हम छोटों का बड़का टोल
करना क्या जी नापी तोल
हम तो बस बिकते बेमोल
बजे नगाड़ा बज्जे ढोल
बोल अरी ओ धरती बोल
काले जामुन लाल लोल
हर गेंदे से मारें गोल
जीत हमारी चल भई चोल
जीत तुम्हारी नहीं ठिठोल
दादा काँधे पोता कोल
ज़्यादा रोटी नमका थोल
माँ चौके में दीदी दोल
दुनिया भारी तनिक न पोल
डेग डेग पर रेलम रोल
चाँद पुराना फिर भी नोल
किस पर्वत पर बस्ती योल

छुपी हुई चीज़ें

उपासना

चित्रः वसुन्धरा अरोरा

पुट्टी एक छुपी हुई जगह ढूँढ रही थी।

“छुपी हुई जगह! यह भी कोई जगह हुई भला?” टुटु ने सोचा।

हाँ, होती है न!

हर घर में होती है एक छुपी हुई जगह। यह होती है, पर दिखती नहीं। दिखती नहीं, इसलिए सब सोचते हैं कि वह होती नहीं। ढूँढने पर वह मिल जाती है। मिल जाती है तब लगता है अरे! यह तो यहीं थी! पहले क्यों नहीं मिली?

क्योंकि ढूँढा नहीं?

ढूँढा क्यों नहीं?

क्योंकि सोचा नहीं।

यानी सोचकर कुछ भी ढूँढा जा सकता है। जैसे, दुनिया की सारी चीज़ें पहले छुपी हुई थीं। फिर उन्हें सोचा गया। सोचकर ढूँढा गया। ढूँढने पर छुपी हुई चीज़ें धीरे-धीरे मिलने लगीं।

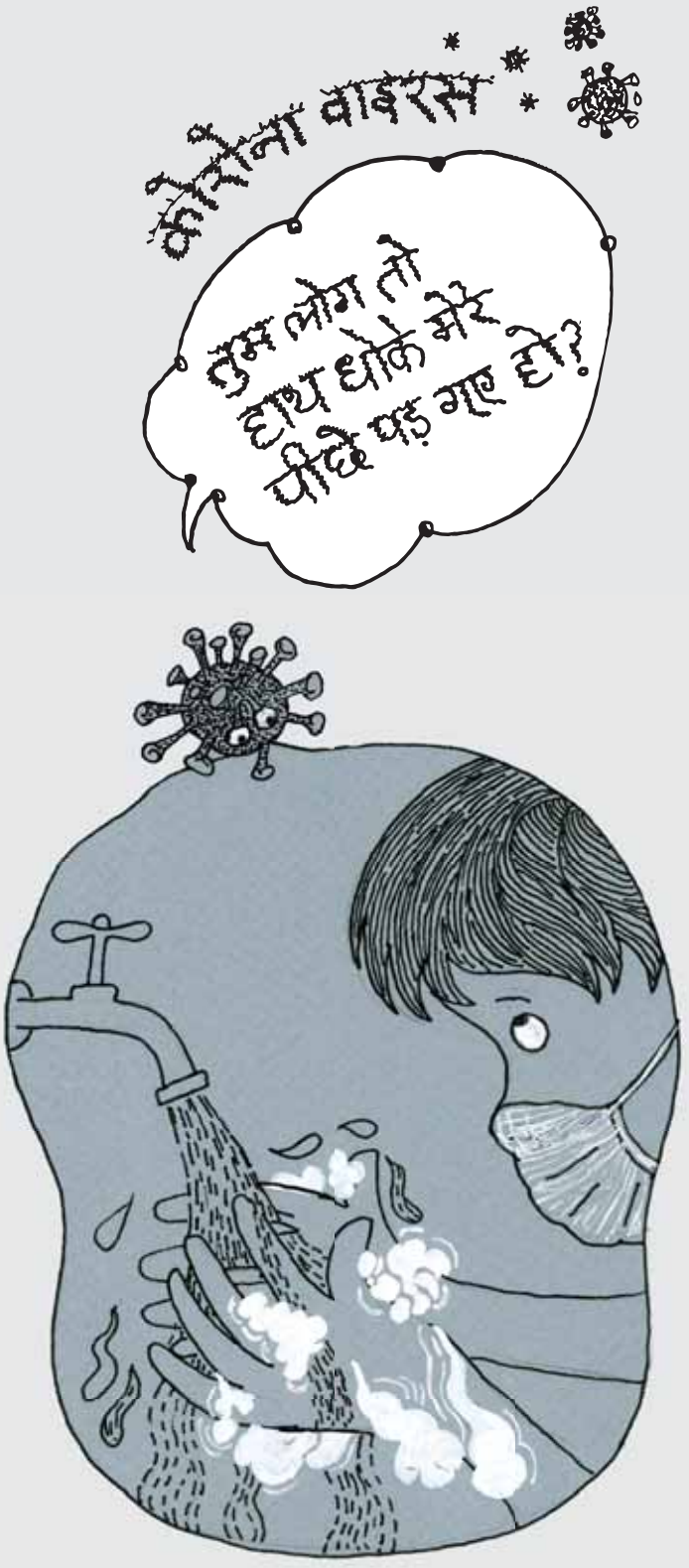

चित्रः तापोशी घोषाल

नन्दू का जुकाम

कृष्ण कुमार
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

रामनरेश त्रिपाठी बच्चों के अनोखे कवि थे। उनका परिचय किसी नए पाठक को देना हो तो ये पंक्तियाँ सबसे उपयुक्त ठहरेंगी-

पहने धोती कुरता झिल्ली,
गमछे से लटकाए किल्ली,
चढ़कर अपनी घोड़ी लिल्ली,
तिल्लीसिंग जा पहुँचा दिल्ली..

लय की ऐसी तरलता और बिम्बों का ठाठ किसी दूसरे कवि में नहीं मिलेगा। 'तिल्लीसिंग' शीर्षक की इस कविता की बीसों पंक्तियाँ घोड़ी के वेग को इसी स्तर पर बनाए रखती हैं। इसकी तुलना में 'नन्दू का जुकाम' कुल छह पंक्तियों की छोटी-सी कविता है, पर रामनरेश त्रिपाठी की सारी भाषाई क्षमताओं की पर्याप्त बानगी देती है। इस कविता में घुसने से पहले जुकाम की चर्चा ज़रूरी है।

जुकाम और खाँसी बचपन के अभिन्न अंग हैं और वायु प्रदूषण के चलते लगातार बढ़ रहे हैं, पर बाल-साहित्य में इनकी उपस्थिति नगण्य है। बड़ों के साहित्य में खाँसी प्रायः गरीबी के सन्दर्भ में इधर-उधर सुनाई दे जाती है, पर जुकाम की कैफियत वहाँ भी गायब है। बच्चों के लिए खाँसी पर एक सुन्दर कविता राबर्ट ग्रेव्ज़ ने लिखी है। इसमें एक लड़का डॉक्टर को खाँस कर आश्वस्त करता है कि उसे खाँसी है। आप इसे जितनी चाहे बार पढ़ लें, हर बार यह कविता आनन्द देगी। कुछ ऐसा ही नन्दू की छींक के साथ है।

नन्दू का जुकाम

बहुत जुकाम हुआ नन्दू को
एक रोज़ वह इतना छींका
इतना छींका इतना छींका
इतना छींका इतना छींका
सब पत्ते झड़ गए पेड़ के
धोखा हुआ उन्हें आँधी का

कौन नहीं जानता कि छींक एक छोटी-मोटी आँधी की तरह आती है! जब आती है तो कोई उसे रोक नहीं सकता। कई बार छींक पर छींक आती जाती है। आँखों में जुकाम के कारण वैसे ही पानी था, छींकों से और भर जाता है। इस हालत का कहर जाड़े में ही ठीक से समझ में आता है। खासकर जाड़े का वह हिस्सा जिसे हेमन्त कहते हैं, जुकाम-खाँसी हो जाने पर खासा परेशान करता है। हेमन्त में कई बड़े मैदानी पेड़ अपने पत्ते गिरा देते हैं। सच यह है कि तेज़ हवा उन्हें गिराती है और जो बच जाते हैं, उन्हें अन्ततः एक ज़ोर की आँधी गिरा देती है।

यह सामान्य प्राकृतिक घटना कितनी ज़ोरदार होती है, रामनरेश त्रिपाठी इस बात का अन्दाज़ा देते हैं। जिस रोज़ का चित्र उनकी कविता ने खींचा है, उसमें जुकाम-खाँसी-आँधी-पेड़-पत्तों के बीच नन्दू नाम का छोटा-सा लड़का खड़ा है। उसकी छींकें इतनी ज़बरदस्त हैं कि हर पत्ते को नीचे ला रही हैं। गनीमत है, नन्दू अकेला है। कविता में उसके आसपास कोई बड़ा होता तो अवश्य डाँटता। जुकाम हो जाना या खाँसना नन्दू की आज़ादी और ताकत बन जाता है। रामनरेश त्रिपाठी शब्दों और तुक की ध्वनि से यह असाधारण उपलब्धि सम्भव बनाते हैं। बन्द नाक और सीने की जकड़न आखिरी पंक्ति के आखिरी शब्दों में यकायक एक झटके-से दूर हो जाती है- 'धोखा हुआ उन्हें आँधी का'। बात पेड़ों पर आ जाती है जिनके पत्तों को ठण्डी हवा की आँधी में गिरने का लम्बा अनुभव है। छींक का 'छ' और अनुस्वार, 'ध', 'ख' और 'आ' पर आई बन्द नाक की आवाज़ पूरे दृश्य को साकार बना देने वाले औज़ारों की तरह मिलकर काम करते हैं।

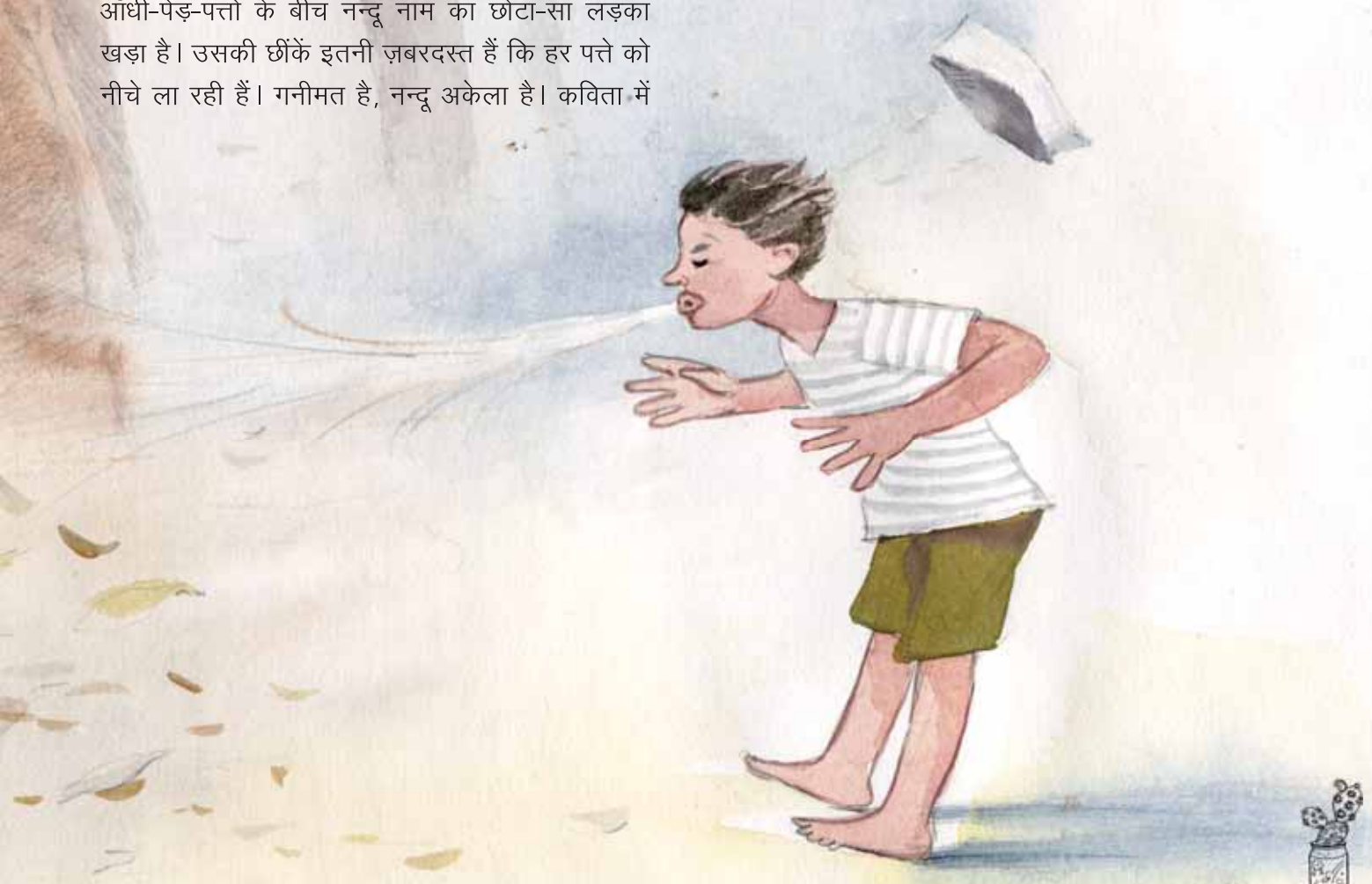

सिकन्दर का पत्र अपने गुरु अरस्तु के नाम

अमर फारुखी

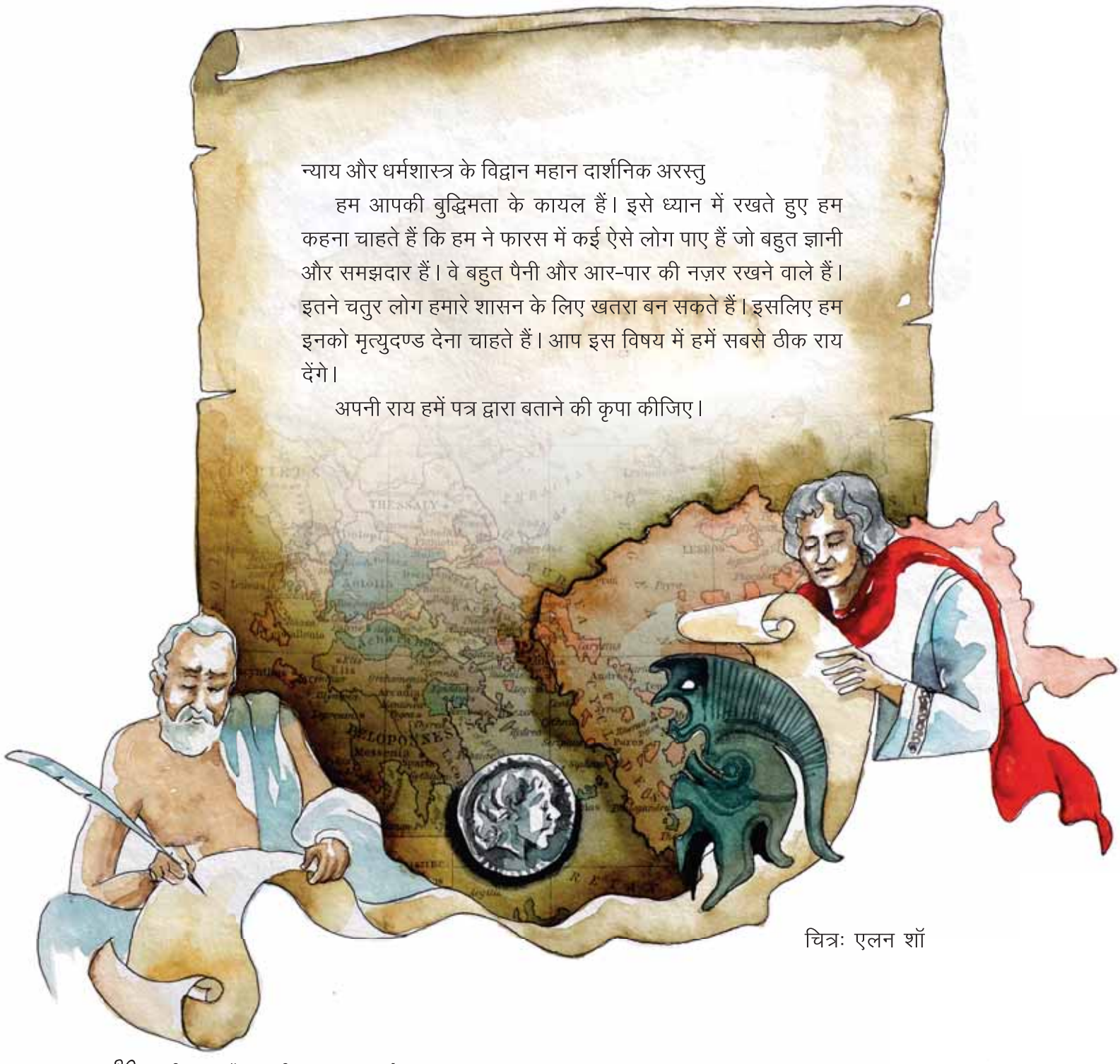

न्याय और धर्मशास्त्र के विद्वान महान दार्शनिक अरस्तु

हम आपकी बुद्धिमता के कायल हैं। इसे ध्यान में रखते हुए हम कहना चाहते हैं कि हम ने फारस में कई ऐसे लोग पाए हैं जो बहुत ज्ञानी और समझदार हैं। वे बहुत पैनी और आर-पार की नज़र रखने वाले हैं। इतने चतुर लोग हमारे शासन के लिए खतरा बन सकते हैं। इसलिए हम इनको मृत्युदण्ड देना चाहते हैं। आप इस विषय में हमें सबसे ठीक राय देंगे।

अपनी राय हमें पत्र द्वारा बताने की कृपा कीजिए।

चित्रः एलन शॉ

अरस्तु का सिकन्दर के नाम पत्र

सिकन्दर,

अगर तुम्हारे लिए धरती व जल पर चलने वाली हवा को बदलना सम्भव हो, तो मेरा जवाब हाँ होगा। यदि तुम अपने अधीन शहरों के चरित्र को अपनी मर्ज़ी के अनुसार बदल सकते हो, तब ऐसा कदम उठाना उचित होगा। यदि यह नहीं कर सकते तो ऐसा कदम हरगिज़ न उठाना। बल्कि उचित यह होगा कि फारस में उन पर कुशल शासन करो। और अपनी उदारता व भलाई से प्रजा को उन्नत करो।

अगर ऐसी सही नीति अपनाओगे तो परमेश्वर की कृपा से वे सब होशियार लोग तुम्हारे शुभचिन्तक बन जाएँगे। और तुम्हारी इच्छाओं के हिसाब से चलेंगे। और तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। उनका प्रेम पाकर तुम उन पर शान्तिपूर्ण तरीके से राज कर पाओगे। इसी में तुम्हारी सच्ची विजय होगी।

अरस्तु

चित्रः तापोशी घोषाल

कोतवाल

पीयूष सेखसरिया
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

बिलाशक इस फुर्तीली, दबंग चिड़िया की हरकतों के कारण ही इसे नाम मिला - कोतवाल। ये शहर, गाँव हर जगह नज़र आ जाती हैं। बाग-बगीचों के पास, तारों पर, खुली जगहों पर बैठीं। एकदम चौकस। काला चमकीला रंग और कैंची-सी कटी पूँछ इसकी पहचान को आसान बना देती है। इसकी पूँछ की वजह से ही इसको भुजंगा नाम भी मिला है। गाँवों में इन्हें अकसर चरती गाय-भैंसों

की पीठ पर फ्री सवारी करते देखा जा सकता है। उनके चलने, घास में मुँह मारने से घास में छिपे कीड़े बेघर हो इधर-उधर उड़ने लगते हैं। इसी मौके की तलाश में बैठी कोतवाल फौरन उड़कर इन्हें अपनी चोंच के हवाले कर वापस भैंस पर आ बैठती है। वैसे तो यह दिन में ही दाना-पानी के लिए निकलती है। लेकिन देर रात लैम्पपोस्ट के आसपास भी गश्त लगाती दिख जाती है। वो इसलिए कि कीड़े इन्हें बहुत पसन्द हैं। और जहाँ ये हैं, भुजंगों का वहाँ होना तय है। फिर लैम्पपोस्ट के पास मण्डराते कीड़े हों या फूलों का रस पीने आए कीड़े। ये सभी को हजम कर जाती है। सेमल के फूलों में चोंच घुसाकर रस पीते भी इन्हें देखा जा सकता है। गहरे, चमकदार लाल सेमल के फूलों के साथ इनका गहरा काला रंग शानदार लगता है।

यही नहीं जंगल या खेतों में लगी आग के आसपास भी ये बदस्तूर दिख जाती हैं। आग से बचे कीड़े, कोतवाल के मुँह में जा अटकते हैं। गाँव और शहरों में कीड़ों की संख्या को काबू में रखने के लिए हमें इनका शुक्रगुज़ार होना चाहिए।

पेड़ों में जहाँ टिकने की जगह मिले, ये घोंसले बना लेती है। अकसर टहनियाँ जहाँ दो हिस्सों में बँटती हैं वहाँ इनके घोंसले को सहारा मिल जाता है। घोंसले दूसरों को

नज़र न आए ऐसी जगह ढूँढने का ये टेंशन बिलकुल नहीं लेतीं। चाहे साँप हों, गोह, कौए, शिकरा या बड़े शिकारी पक्षी - अपने अण्डे-बच्चे बचाने की खातिर ये सब से भिड़ जाती हैं। और उन्हें मार-भगाती हैं। इसका फायदा कई दूसरे छोटे-डरपोक पक्षी भी उठाते हैं। मैंने खुद फरीदाबाद के मंगर बाणी जंगल में येलो फुटेड ग्रीन पिजन और फैनटेल फ्लाइकैचर को कोतवाल के घोंसले के पास घर बनाते देखा है। यानी कोतवालों का दबदबा वहाँ भी बरकरार है।

कार्टूनः राजेन्द्र धोड़पकर

देख आएँ ये अपरम्पार

नवीन सागर
चित्रः एलन शॉ

चलो-चलो बादल के पार
चलो चलो
देख आएँ ये अपरम्पार
चलो चलो
जो भी आए साथ हमारे
आने दो
आ जाएँ सारे के सारे
आने दो
पंछी हैं ये पंख पसारे
आने दो
मत रोको आते हैं तारे
आने दो
परियाँ खोल रही हैं द्वार
चलो चलो
उड़े चलो बादल के पार
चलो चलो

पीपी तुम भी चलो
मगर तुम सोना मत
टेंटें तुम रोते हो अकसर
रोना मत
गुड़िया तुम
भरपेट अभी खा लो खाना
ऊपर जा के भूख-भूख
मत चिल्लाना
मंगल पर होगा सत्कार
चलो चलो।
देख आएँ ये अपरम्पार
चलो चलो...

समानता...

मोहम्मद अरशद खान
चित्रः प्रोइती रॉय

एक सनकी राजा था। उसे जो भी सनक चढ़ जाए उसे पूरा करके ही दम लेता था। दरबार के मंत्री, सेनापति, सामन्त सब परेशान रहते थे कि पता नहीं राजा कब कौन-सा अटपटा फरमान निकाल दे। प्रजा भी त्रस्त हो चुकी थी।

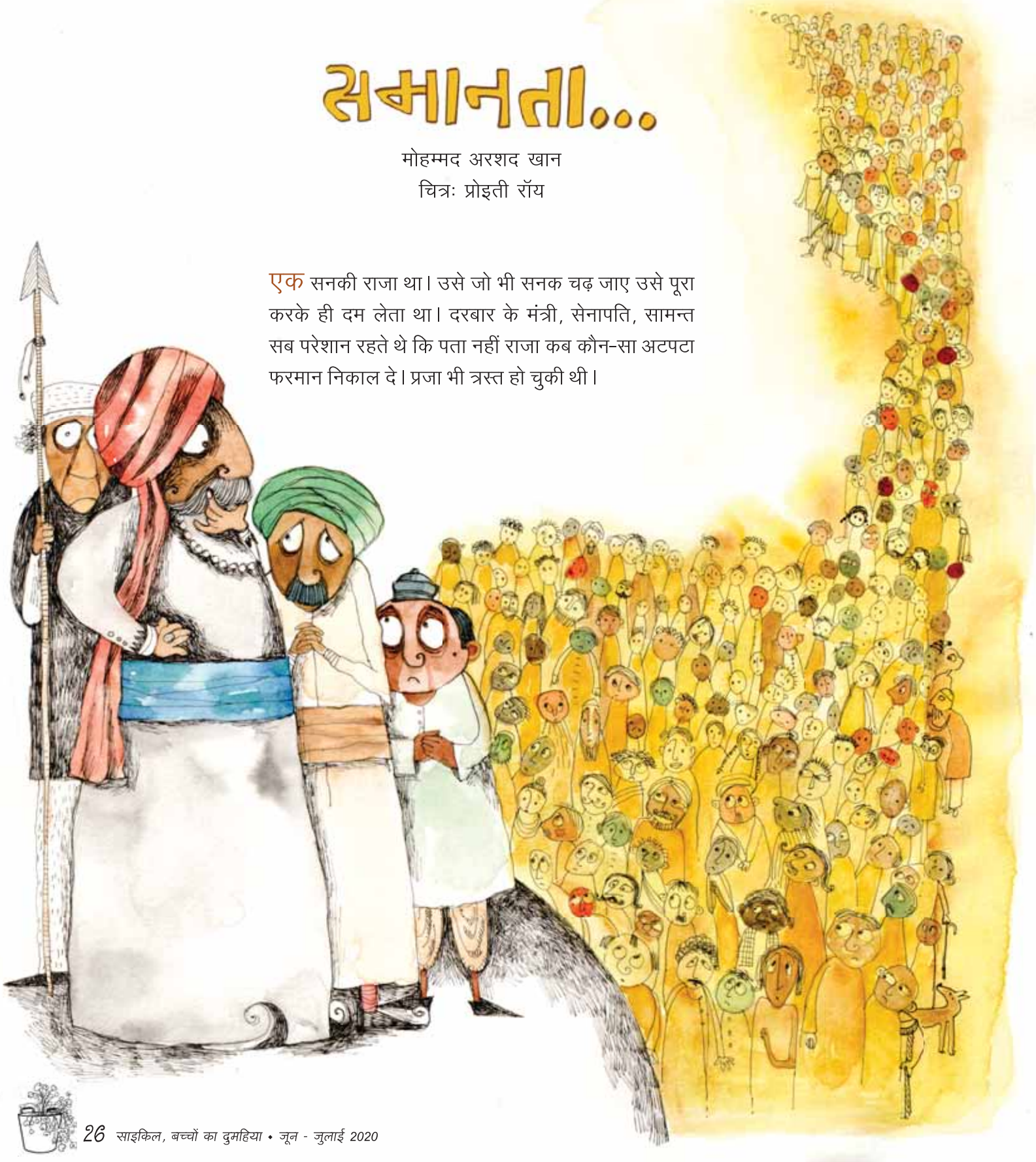

एक दिन राजा दरबार में बैठा हुआ था कि अचानक उसकी नज़र बगीचे में बैठे कौओं पर पड़ी। वह कुछ देर सोचता रहा फिर गम्भीरता से बोला, "मंत्री जी, हमने देखा है सारे कौए एक ही रंग के होते हैं। मक्खियाँ, गिरगिट, तिलचट्टे भी सब एक जैसे होते हैं। आखिर आदमी ही इतना रंग-बिरंगा क्यों होता है?"

मंत्री सँभलते हुए बोला, "शायद इसलिए महाराज क्योंकि आदमी तरह-तरह के कपड़े पहनता है। इसलिए हर आदमी अलग-अलग दिखाई देता है।"

"तो फिर सारे राज्य में एलान कर दो।" राजा कड़ककर बोला, "आज से राज्य के सारे नागरिक सिर्फ पीले रंग के कपड़े पहनेंगे। मैं पूरे राज्य में समानता लाना चाहता हूँ। अगर कोई भी आज्ञा-पालन में आनाकानी करे तो उसे तत्काल सूली पर चढ़ा दो।"

राजा का इतना कहना था कि सारे राज्य में ढोल पिटवा दिया गया। लोग भाग-भागकर पीले कपड़े सिलाने लगे। कपड़ा व्यापारियों और दर्ज़ियों की पौ बारह हो गई। उन्होंने जनता को खूब लूटा।

एक सप्ताह बाद राजा ने सबको एक बड़े मैदान में इकट्ठा होने का आदेश दिया। जब सारे लोग इकट्ठे हो गए तो वह निरीक्षण करने आया।

पूरा मैदान पीले रंग के समुद्र की तरह लहरा रहा था। मंत्री मन ही मन खुश हो रहा था कि राजा उसे ज़रूर शाबाशी देगा। पर राजा असन्तुष्ट था। उसने कहा, "मंत्री जी, कपड़े तो सबके एक तरह के हो गए, पर लोग अब भी एक जैसे नहीं दिखाई दे रहे हैं। कुछ जवान और हृष्ट-पुष्ट हैं। कुछ बूढ़े मरियल-से दिख रहे हैं। इन बूढ़ों को इस राज्य से हाँक दो। न मानें तो नदी में डुबो दो।"

राजा का आदेश सुनकर अफरा-तफरी मच गई। बेचारे बूढ़े-बुज़ुर्ग राज्य छोड़कर भागने लगे। कुछ ने डर के मारे आत्महत्या कर ली। कुछ को पकड़कर नदी में डुबो दिया गया। पूरे राज्य में रोना-पीटना मच गया। उन बूढ़ों में बहुत विद्वान और पढ़े-लिखे लोग भी थे। पर राजा को कौन समझाता?

कुछ समय बाद राजा ने फिर सबको मैदान में इकट्ठा होने का आदेश दिया। इस बार मंत्री ने पहले से तैयारी कर रखी थी। उसने मोटे-ताज़े और जवान लोगों को सबसे आगे खड़ा कर रखा था। उसे विश्वास था कि इस बार राजा ज़रूर सन्तुष्ट हो जाएगा।

पर राजा फिर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने मंत्री को गुस्से से घूरते हुए कहा, "तुमने देखा नहीं कि इनमें कुछ लोग काले हैं, कुछ गोरे। ये काले लोग हमारे राज्य की सुन्दरता बिगाड़ रहे हैं। इन्हें निकाल बाहर करो।"

राजा के सैनिक फिर से गाँव-गाँव गली-गली घूमकर आज्ञापालन में जुट गए। काले लोगों को छाँट-छाँटकर बाहर किया जाने लगा। कुछ डर के मारे जंगलों में जाकर छिप गए। कुछ रेगिस्तानों में भाग गए। जो बचे उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। निर्धारित समय के बाद फिर सारी जनता को इकट्ठा किया गया।

समय पर राजा आया। मदमाता, झूमता। मद से लाल-लाल आँखें लिए हुए। जनता को देखते ही बिफरकर बोला, "मंत्री, तुमसे कभी कोई काम ठीक से नहीं होता। तुम जैसे लोगों के कारण ही पड़ोसी राज्यों में हमारी बदनामी होती है। ठीक से देखो, इनमें अब भी असमानता है।"

मंत्री हाथ जोड़कर काँपते हुए बोला, "महाराज, मैंने तो आपकी आज्ञानुसार सारे काले लोगों को राज्य से बाहर निकाल दिया। अब तो सिर्फ गोरे लोग ही बचे हैं।"

"पर इनमें भी कोई मोटा है, कोई पतला। मेरे राज्य में सिर्फ मोटे लोग ही रहेंगे। सारे कमज़ोर और पतले लोगों को बाहर निकाल दो।"

मंत्री फिर से काम में जुट गया।

हफ्ते भर बाद राजा फिर आया। उसने जनता पर एक निगाह डाली और कहा, "ये अब भी समान नहीं हैं। इनमें कुछ लम्बे हैं और कुछ नाटे। मेरे राज्य में नाटे लोगों की

कोई जगह नहीं है।"

मंत्री और उसका अमला फिर से आज्ञापालन में जुट गया।

इसी तरह राजा कभी गंजी चाँदवालों को बाहर करता रहा। तो कभी घुँघराले बालवालों को। कभी चपटी नाकवालों को, तो कभी छोटी आँखवालों को।

और फिर एक दिन ऐसा आया कि राज्य में कोई नहीं बचा। उसके मंत्री, दरबारी, सैनिक यहाँ तक कि उसके अपने परिवार के लोग भी उसकी सनक का शिकार हो गए। पूरे राज्य में राजा अकेला बचा। बहुत दिनों तक वह पागल होकर दर-दर भटकता रहा। फिर एक दिन उसने परेशान होकर जान दे दी।

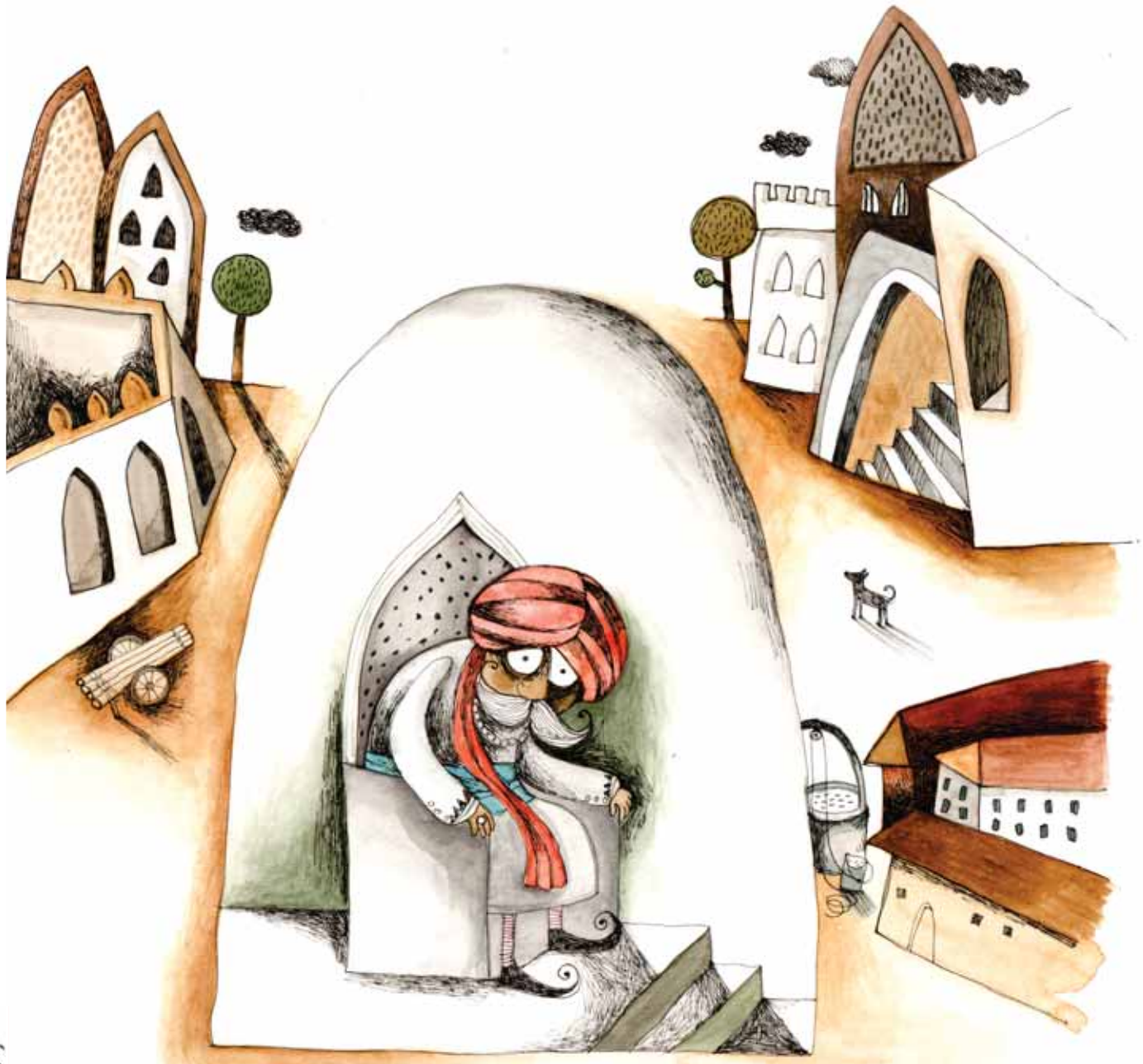

माथापच्ची

1 16, 06, 68, 88 ? 98
? में कौन-सी संख्या आएगी?

2 ऐसा क्या है जो आप सीधे हाथ से पकड़ सकते हैं मगर उलटे हाथ से नहीं।

3 मान लो तुम्हारे पास 87 गुलाब हैं। तुम ऐसे कितने वर्ग बना सकते हो जिनके हर कोने पर एक गुलाब रखा हो?

4 जनाब पैदा हुए 1948 में। और हाल में उन्होंने अपना 16वाँ जन्म दिन मनाया। कैसे?

5 मैं जितना ज़्यादा रहूँगा उतना ही कम देख पाओगे।

6 ये एक बहुत पुरानी ईजाद है जिससे लोग दीवारों में से भी देख सकते हैं।

7 6 कँचे हैं। उनमें से एक बाकी से भारी है। अगर तराज़ू मिले तो क्या तुम दो बार तौल कर भारी कँचे को अलग कर सकते हो?

8 सब कुछ पता हो तब भी इतनी ही होती हैं जितनी कुछ न पता होने पर होती हैं।

9 हूँ तो मैं हवा से हलका
मगर दस लोग मिलकर भी मुझे नहीं उठा सकते हैं।

10 1 = 5
2 = 25
3 = 325
4 = 4325
5 = ?

11 तिलिस्मी वर्ग
1 से 9 तक सभी संख्याएँ इस वर्ग में इस तरह भरो कि हर पंक्ति का जोड़ बराबर हो।

2	8	6
9	1	5
3	4	7

1. इन संख्याओं को एक कागज़ पर लिखकर कागज़ को पलट कर देखो। ये संख्याएँ नज़र आएँगीं - 91, 90, 89, 88, ..., 86 2. सीधा हाथ 4. 29 फरवरी 1948 में पैदा हुए 5. अँधेरा 6. खिड़की 7. तीन-तीन कँचे एक एक पलड़े पर रख तोल लें। जो भारी होगा उस तरफ के तीन में से दो एक-एक तरफ रख तोल लें। 8. उलझन 9. इसका एक जवाब तो धुआँ है। और तुम सोचो 10. 54325

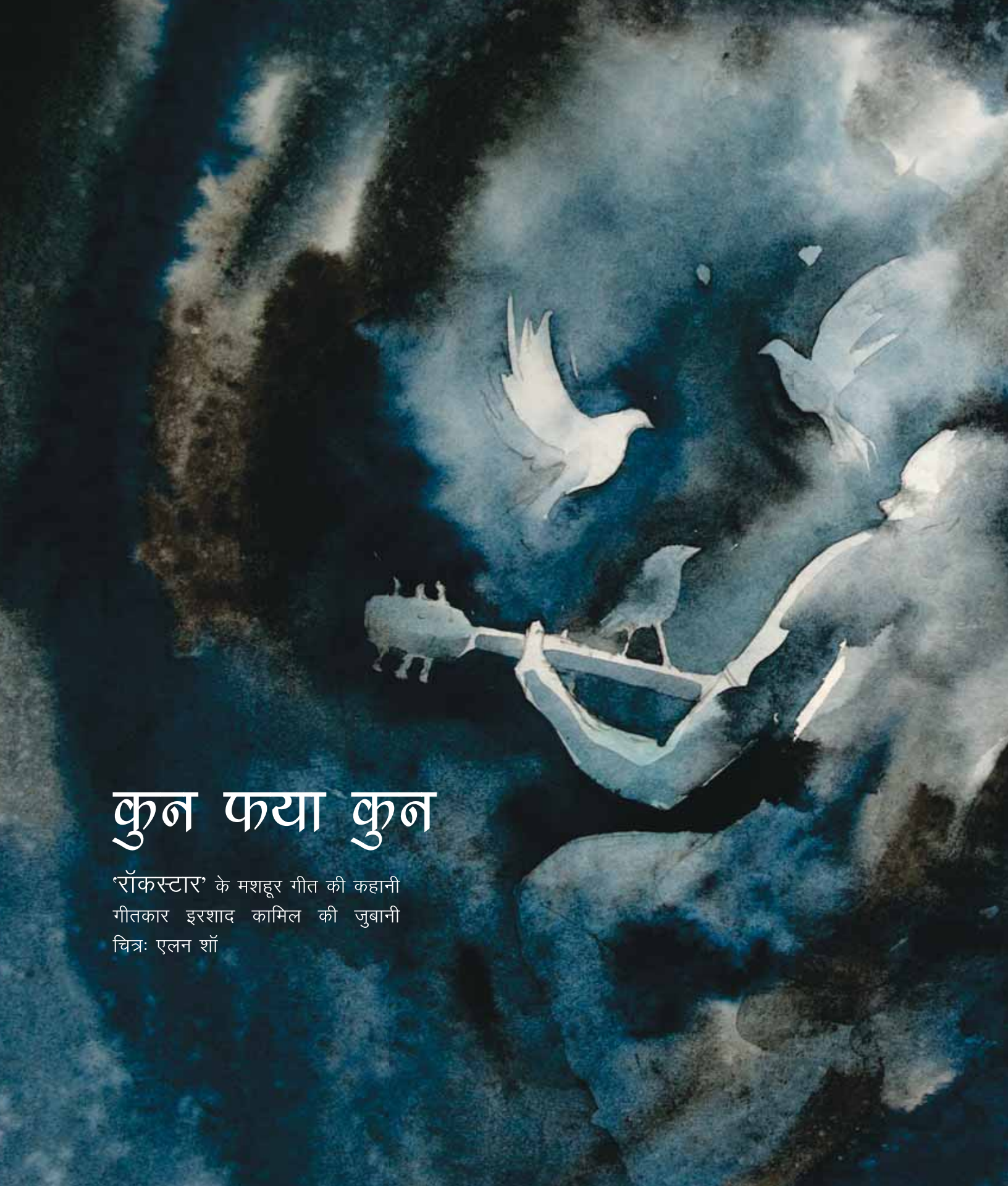

कुन फया कुन

'रॉकस्टार' के मशहूर गीत की कहानी
गीतकार इरशाद कामिल की जुबानी
चित्रः एलन शॉ

'रॉकस्टार' का नायक जॉर्डन सिंगर बनना चाहता है। मगर उसके घर वाले उसे किसी काम धँधे में लगा देना चाहते हैं। ताकि वो दो पैसे कमा सके। और एक खुशहाल ज़िन्दगी जी सके। मगर जॉर्डन को यह मंज़ूर नहीं है। वह अपनी ज़िन्दगी अपनी तरह से जीना चाहता है। वह सोचता है कि ज़िन्दगी का मकसद क्या सिर्फ रोटी कमाना होता है?

पर 'कुन फया कुन' क्यों लिखा गया?

ये कुरान में आए लफ्ज़ हैं। यह लफ्ज़ आठ बार कुरान में आया है। जब मैंने कुरान पढ़ी मेरे ध्यान में ये लफ्ज़ नहीं आए थे। बुल्ले शाह को पढ़ते हुए इन पर मेरा ध्यान गया। कुन..फया कुन..ये क्या है?

पहले खुदा ने सिर्फ फरिश्ते बनाए। फरिश्तों का काम खुदा की इबादत करना था। शैतान भी एक फरिश्ता ही है। वो फरिश्ता जिसने खुदा के खुदा होने से इन्कार कर दिया था। इन फरिश्तों को लगा कि ये खुदा इस वजह से है कि हम उसकी इबादत करते हैं। अगर हम इबादत करना छोड़ देंगे तो खुदा नहीं रहेगा। राजा तभी तक राजा है जब तक प्रजा मान रही है कि ये राजा है। खुदा ऐसा नहीं है।

फिर खुदा ने एक ऐसी दुनिया बनाने का इरादा किया जिसके पास अनगिनत रास्ते होंगे या अनगिनत वजहें होंगी उसे ना मानने की। या अनगिनत वजहें होंगी उसके रास्ते में आने की। लेकिन फिर भी देखना कि लोग उसे मानेंगे। लोगों के दिल में वह रहेगा। जितनी चीज़ें खुदा ने बनाई हैं, उनमें सबसे बेहतर चीज़ इंसान है। तो क्या बनाओगे, इन्सान बनाऊँगा..तो कैसे बनाओगे?

मैं कहूँगा 'कुन' यानी हो जा, तो 'फया कुन' यानी हो जाएगा।

और उसने कहा 'कुन' तो दुनिया बन गई, हो गया फया कुन।

पर इस फया कुन का, 'रॉकस्टार' के जॉर्डन से क्या रिश्ता है?

आपने शायद यह फिल्म 'रॉकस्टार' देखी होगी। घर से जॉर्डन को इस वजह से निकाल दिया जाता है कि तुम ज़िन्दगी में कुछ नहीं कर पाओगे, तुम गिटार लेकर गाना बजाते रहते हो, गाना गाते रहते हो। और गाना गाने से, गिटार बजाने से लाइफ में कुछ नहीं होता है। हर एक इन्सान के दिमाग में अपनी एक दुनिया होती है। आप सोचिए, आपके ज़ेहन में भी तो आपकी एक आदर्श दुनिया की कल्पना होगी। जिसकी तरफ आप बढ़ना चाहते हैं।

जॉर्डन अपनी कल्पना की दुनिया की तरफ बढ़ना चाहता है। है तो वह भी ऊपर वाले का हिस्सा। तो वह भी दुनिया बनाने के लिए यही तो कहेगा - कुन, और फया कुन - और हो जाएगा।

आगे गीत में है

कदम बढ़ा ले, हदों को मिटा दे

हदें तो हमने ही बनाई हैं। और सम्भावनाएँ भी हम ही बनाते हैं। कोई चीज़ गलत तब हो जाती है जब सामने वाले के हिसाब से नहीं होती। गलत वो चीज़ होती है जो मेरे हिसाब से गलत है।

कदम बढ़ा ले हदों को मिटा दे

और इस तरह से वह वहाँ पहुँचा जहाँ

- जब कहीं पे कुछ नहीं भी नहीं था।

वही था वही था।

इस अंतरे पर बड़ी चर्चा हुई। कुछ ने कहा कि एक ही पंक्ति में दो बार नहीं कैसे आया? कुछ ने समझा कि धुन मिलाने, मीटर मिलाने के लिए नहीं जोड़ लिया गया है।

लफ्ज़ क्या आपको इतनी मोहलत देते हैं कि आप उन्हें कहीं से भी उठाओ और कहीं भी चिपका दो?

कुछ नहीं यहाँ पर इसलिए है क्योंकि कहीं पे कुछ था। अगर कहीं पे कुछ है तभी तो दूसरी जगह पर कुछ नहीं है। जब कहीं पे कुछ नहीं भी नहीं था

मतलब क्या-क्या नहीं था -

पहले तो कुछ नहीं था।

फिर उसका आपने क्या किया है। कहीं पे कुछ नहीं भी नहीं था,

मतलब क्या-क्या नहीं था

पहले तो कुछ नहीं था

फिर उसका हमने किया है - कुछ नहीं था,

लेकिन कुछ नहीं भी नहीं था,

वो भी नहीं था।

सिर्फ एक खला थी,

एक स्पेस था, वो तो तब भी था,

जब कहीं पर कुछ नहीं भी नहीं था..

वही था..वही था..

वो था तब।

इस गीत के फिल्माते वक्त जॉर्डन घर छोड़ देता है। सड़कों पर बैठा रहता है। सोचता है कहाँ जाऊँ... और फिर निज़ामुद्दीन की दरगाह जाता है। वहीं कव्वालियाँ चल रही होती हैं। जहाँ वो गिटार बजाता है। और उनके साथ गाने लगता है। और इस तरह से एक ज़हनी सफर पर निकल पड़ता है।

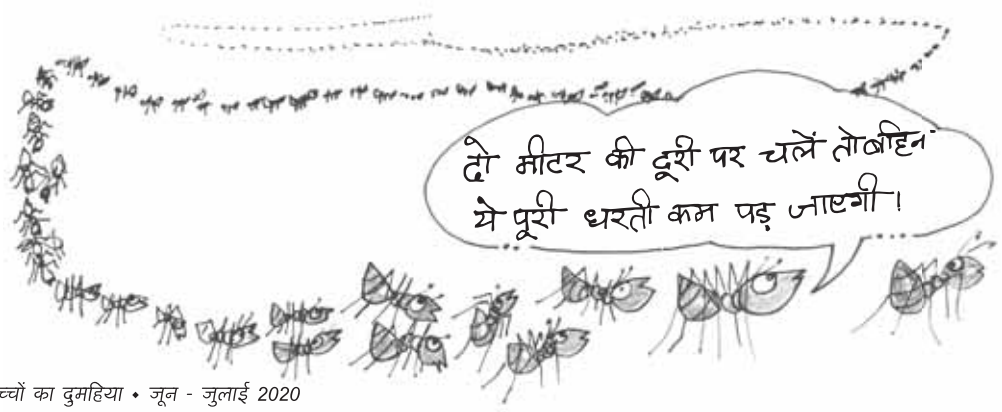

हमने जामुन खाए...

सुशील शुक्ल
चित्रः तापोशी घोषाल

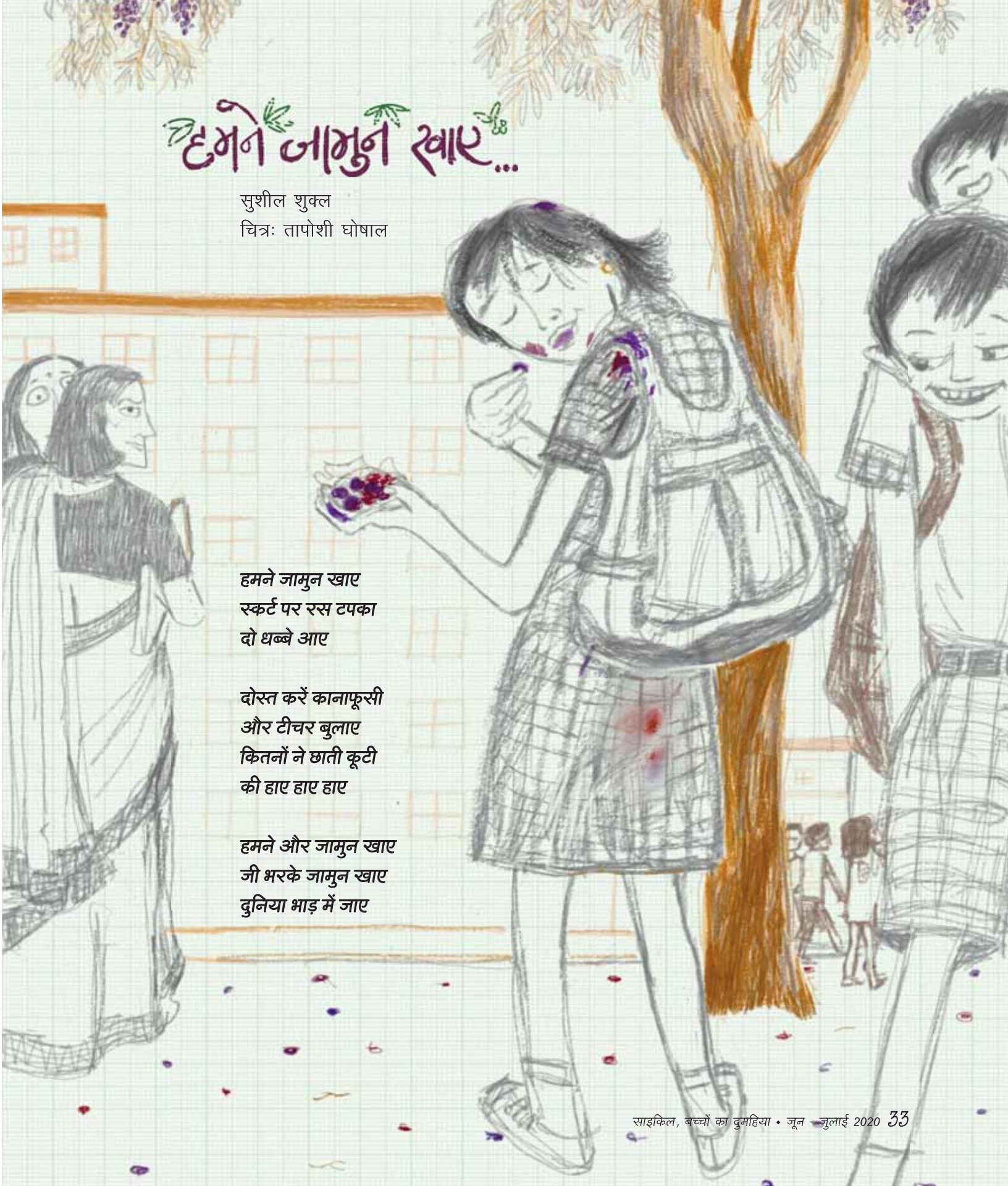

हमने जामुन खाए
स्कर्ट पर रस टपका
दो धब्बे आए

दोस्त करें कानाफूसी
और टीचर बुलाए
कितनों ने छाती कूटी
की हाए हाए हाए

हमने और जामुन खाए
जी भरके जामुन खाए
दुनिया भाड़ में जाए

चित्र-1

एक स्टूडेण्ट, एक टीचर

अशोक भौमिक

आज भी हमारे आसपास रंग, जाति, धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव देखने को मिलते हैं। इन भेदभावों के खिलाफ दुनिया भर में आवाज़ उठाई गई। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद कानून के खिलाफ ऐतिहासिक आंदोलन हुआ था। अमेरिका जैसे देश में पिछली सदी के मध्य तक कई स्कूलों में अश्वेत बच्चों को पढ़ने की अनुमति नहीं थी। इसके खिलाफ लम्बा आंदोलन चला। 1954 में आखिरकार अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने इस अलगाववादी व्यवस्था को गैरकानूनी घोषित किया। इसके बाद भी अश्वेत बच्चों का स्कूलों में दाखिला आसान नहीं था। उन्हें इसके लिए लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी।

14 नवम्बर 1960 का न्यू ऑरलियन्स शहर के विलियम फ्रैंट्ज़ एलीमेण्ट्री स्कूल का वाकया है। वहाँ छह साल की अश्वेत लड़की रूबी ब्रिजेस ने दाखिला लिया। रूबी को जान से मार देने की धमकी दी जाने लगी। रूबी पुलिस की पहरेदारी में स्कूल जाती रहीं। (चित्र-1)

रूबी के दाखिले के विरोध में बड़ी संख्या में गोरे अभिभावकों ने अपने बच्चों को इस स्कूल से निकाल लिया। हालात यहाँ तक पहुँचे कि रूबी अपनी कक्षा में अकेली रह गईं। टीचर बारबरा हेनरी ने अपनी इस अकेली छात्रा को एक साल पढ़ाया। अश्वेतों के लिए यह कड़वी स्थिति कई वर्ष बनी रही। 2 जुलाई 1964 को ऐतिहासिक

कानून पारित हुआ। इसमें जाति, धर्म, लिंग तथा रंग के आधार पर भेदभाव को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया।

नॉरमन रॉकवेल (1894-1978) अमेरिका के मशहूर इलस्ट्रेटर रहे हैं। उन्होंने इस कानून का स्वागत किया। और रूबी को केन्द्र में रखकर एक चित्र बनाया। रॉकवेल ने इसके लिए रूबी के छायाचित्र (चित्र-1) को आधार माना। उन्होंने सुरक्षा दस्ते के प्रमुख के बयान का भी सहारा लिया। रूबी के बारे में उन्होंने कहा, "उसने बहुत हिम्मत दिखाई। वह इस पूरी लड़ाई में बहादुरी से साथ खड़ी रही। हमें उस पर गर्व है।"

नॉरमन रॉकवेल के इस चित्र में रूबी को देखो। चार सुरक्षा कर्मियों के साथ-साथ बाईं तरफ की दीवार पर लिखे 'KKK' देखो। इसे 'क्लू कलक्स क्लान' या 'द क्लान' नाम से जाना जाता है। यह समूह मानता था कि श्वेत लोग ही बेहतर होते हैं। दीवार पर अश्वेतों को अपमानित करने वाला शब्द 'निगर' लिखा हुआ है। रूबी पर फेंके गए टमाटर के लाल निशान भी साफ दिखाई देते हैं। इस चित्र को रॉकवेल ने नाम दिया, 'हम सब जिस मुश्किल में जी रहे हैं।'

रूबी ब्रिजेस मानवाधिकार कार्यकर्ता हैं। वे नस्लवाद और रंग भेद को खत्म करने के लिए बनी संस्था रूबी ब्रिजेस फाउण्डेशन की प्रमुख हैं।

चौक-सी

चित्रः एलन शॉ

ज़मीन को, उसकी मिट्टी को दबोचकर शहर बसते। रास्ते होते। उनसे कुछ लोग कहीं पहुँच जाते। कुछ लोग उनसे लौट आते। हालाँकि लौटने के लिए कोई रास्ता न बनता। कहीं चले जाने के लिए लोग रास्ते बनाते। लौटने के लिए लोग घर बनाते। कई लोग बेघर होते। तो वे लौटते तो भी लगता कि वे कहीं जा रहे हैं। दिन में तारे दिखते रहते। तारे को मैं रोशनी से कम दूरी से ज़्यादा

पहचानता। तारे एक रोशनी की बूँद की तरह दिखते। हालाँकि वे एक समूची दुनिया होते। ज़मीन पर भी एक आसमान होता। ज़्यादातर लोग बिलकुल पास रहकर भी तारे की तरह बने रहते। उनका एक भरा-पूरा संसार होता। पर वे बूँद भर दिखते। अपरिचित। दूर। रात में लोग करोड़ों मील दूर के तारे को पहचान लेते। ध्रुव तारे से लोग दिशा जानते फिरते। वहीं दिन के उजाले में अनेकों लोग तारे बने रहते। मैं शहर में घूमता और इन अनेकानेक तारों से दिशा समझने की कोशिश करता।

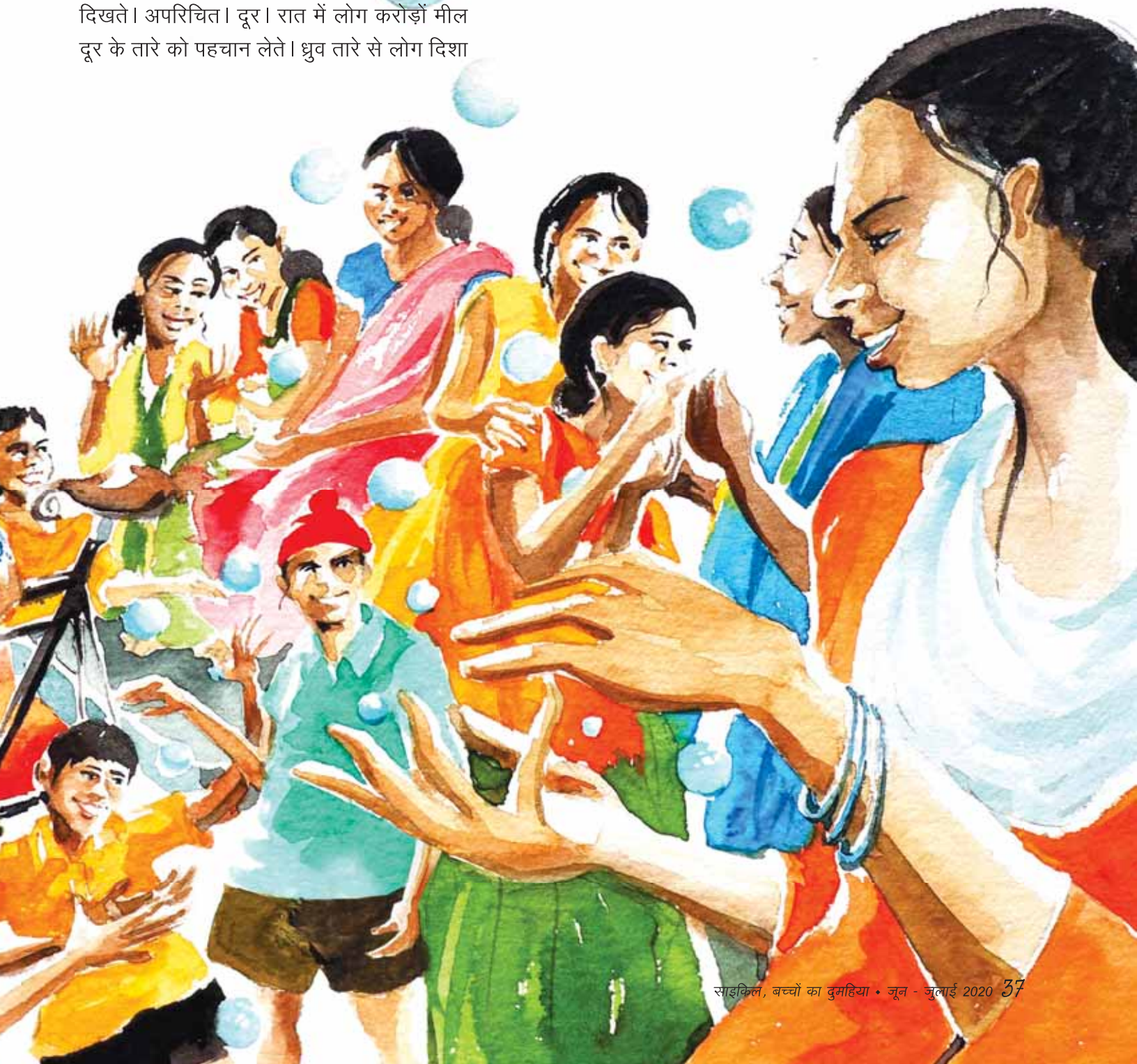

एक खत...

तेजी ग्रोवर
चित्रः तापोशी घोषाल

मेरे प्रिय मित्रो,

इस खत में मैं आज आपको एक और खत के बारे में बताना चाहती हूँ। यह खत मेरे एक बर्तानवी मित्र ऐलन लदाक ने दार्शनिक रामचन्द्र गाँधी को लिखा था। रामचन्द्र गाँधी को सभी प्यार और सम्मान से रामू कहते थे। वे गाँधीजी के पौत्र थे। हुआ यूँ कि ऐलन से मेरे घर का पता खो गया था और वे मेरे कई मित्रों को खत लिखकर पूछ रहे थे। उन्हीं में से एक रामू भी थे। मेरे मित्र ऐलन बिलकुल मामूली चीज़ों के चित्र खींचते थे। इससे उस मामूली-सी चीज़ में जादू-सा भर जाया करता था। कई रेलवे प्लेटफॉर्मों पर लगे लोहे के मोटे-मोटे नल या किसी टूटी-फूटी और हर तरफ से खुली इमारत के दरवाज़े पर पड़े बड़े-बड़े जंग लगे ताले। कभी जंग लगी कीलों पर तो कभी एक अकेले फूटे हुए पटाखे पर ऐलन देर तक अपने कैमरे की आँख टिकाए रखते।

ऐलन ने जो खत रामू गाँधी को लिखा था उसमें उन्होंने बीकानेर स्टेशन पर हुई एक सुन्दर घटना का वर्णन इस प्रकार किया थाः

"मैं स्टेशन पर बैठ गाड़ी का इन्तज़ार कर रहा था। संयोग से स्टेशन के दो अलग-अलग दरवाज़ों से एक ही समय लाठी टेकते हुए दो व्यक्तियों ने प्रवेश किया। प्लेटफॉर्म पर पहुँचकर वे दिशा का अनुमान लगाते हुए संयोग से एक-दूसरे की ओर चलने लगे। सहसा वे आपस में टकरा गए। उन्हें यह समझने में ज़रा समय लगा कि सामने वाला व्यक्ति भी देख नहीं सकता। रामू, मैं नहीं जानता कि वे एक-दूसरे को जानते थे या नहीं। लेकिन टकरा जाने के बाद जब उन्होंने स्थिति को भाँप लिया तो एक-दूसरे को गले से लगाकर वे दोनों कुछ क्षण तक मौन खड़े रहे।"

"यकीन मानिए, रामू, वह मेरे जीवन का एक अद्‌भुत क्षण था। मैंने सोचा, कि यह घटना केवल भारत जैसे देश में ही घट सकती है।"

मेरे मित्र ऐलन की माँ इंग्लैण्ड की रहने वाली थीं और ऐलन के पिता भारत के एक मुस्लिम परिवार के थे। ऐलन जब पहली बार भारत आए थे तो उनसे मेरी मुलाकात राजस्थान में हुई थी। ऐलन के पिता भारत छोड़ इंग्लैण्ड में बस गए थे। वे जब पाँच बरस के हुए तो उनके पिता को कैंसर हो गया था। माँ पिता से अलग हो चुकी थीं और उनके बारे में जो भी कहती थीं, उससे नन्हा ऐलन समझ नहीं पाता था कि पिता अच्छे हैं या बुरे। माँ पिता से मिलने अस्पताल जातीं तो नन्हा ऐलन नीचे खड़ा छठी मंज़िल की उस खिड़की को देखता रहता जो पिता के वॉर्ड की खिड़की थी। माँ ऐलन को अस्पताल के अन्दर नहीं ले जाना चाहती थीं। बड़े होने पर पिता को याद करने पर बस अस्पताल की वही खिड़की ऐलन को याद आती, जिसे वे गली में खड़े होकर देखा करते थे।

बार-बार भारत की यात्रा करने आते मेरे मित्र ऐलन यह मानते थे कि इन यात्राओं से उन्हें अपने पिता के बारे में सोचने में मदद मिलती है। मुझे नहीं पता ऐलन इन दिनों कहाँ हैं, न ही हमारे मित्र रामू गाँधी अब जीवित हैं जो बिछुड़े हुए मित्रों को आपस में मिलवा दिया करते थे।

इस कहानी की मुझे खूब याद आती है। साथ-साथ हमारे प्यारे रामू की भी और एक विचित्र ढंग से अपने पिता को ढूँढते हुए ऐलन की भी।

धूप

तेजी ग्रोवर
चित्रः तापोशी घोषाल

हम दो अलग-अलग गाँव हैं
बैलगाड़ी और धूप नाम के

पर यूँ ही कभी
हमारी फसलों की खुशबू
इकट्ठी रसोई में चली आती है

हम दो पास-पास के गाँव हैं
कभी धूप
बैलगाड़ी में बैठती है
कभी बैलगाड़ी धूप में।

इकतारा की नई किताब
मन में खुशी पैदा करनेवाले रंग
लेखन - तेजी ग्रोवर
चित्र - तापोशी घोषाल
कीमत - 200
इसे www.ektaraindia.in से मँगाया जा सकता है।

चित्रकार और बाघ

चन्दन यादव

चित्रः तापोशी घोषाल

एक चित्रकार था। वो नदी किनारे कैनवास लगाकर चित्र बना रहा था। तभी एक बाघ वहाँ पानी पीने आया। पानी पीने के बाद बाघ की नज़र चित्रकार पर गई। उसने पास जाकर देखा। उसे कैनवास पर हूबहू वही पहाड़ बना नज़र आया, जहाँ से वो आया था। वो नदी भी दिखी जिससे उसने अभी-अभी पानी पिया था। बाघ का मन हुआ कि चित्रकार उसका चित्र भी बनाए।

चित्रकार चित्र बनाने में इतना डूबा था कि उसका ध्यान अब तक भी बाघ पर नहीं गया था।

बाघ ने पूछा, "क्या तुम मेरा चित्र बनाओगे?"

चित्रकार तो बाघ की भाषा समझता नहीं था। उसे सिर्फ बाघ की दहाड़ सुनाई दी। जब उसने बाघ देखा तो अपने रंग और ब्रश वहीं छोड़कर "अरे बाप रे" चिल्लाता हुआ भाग गया।

बाघ भी चित्रकार की भाषा नहीं समझता था। वह समझा कि चित्रकार नया कैनवास लेकर आने का कहकर गया है। बाघ बड़ा खुश हुआ और वहीं बैठकर चित्रकार का इन्तज़ार करने लगा।

भाग-3

भारत का सफर

नव पाषाण युग

मीनाक्षी नटराजन
चित्रः एलन शॉ

आदि मानव एक पत्थर पर दूसरे पत्थर की चोट करके औज़ार बनाते थे। धीरे-धीरे उन्होंने पत्थरों को एक-दूसरे से घिसकर औज़ार बनाने शुरू कर दिए। ये नए औज़ार नए पाषाण (पत्थर) युग की दस्तक थे। इन औज़ारों का उपयोग खेती के लिए किया जा सकता था।

आज से 11000 साल पहले एशिया महाद्वीप के पश्चिम में बीजों को कूटने-पीसने के लिए पत्थर का सिलबट्टा-सा इस्तेमाल होने लगा था। खेती अलबत्ता तब भी नहीं होती थी। मगर बीजों को सहेजना मानव समूहों ने शुरू कर दिया था।

आज से तकरीबन 8000 साल पहले मानव समाज ने खेती की ओर रुख किया। बीज बोना, ज़मीन तैयार करना, फसल काटना, बीज को भूसे से अलग करना और फसल की ज़रूरत का ध्यान रखना शुरू किया। पशुपालन भी इसके साथ-साथ शुरू हुआ। खेती से जानवरों को चारा मिलने लगा। उनका उपयोग खेती के लिए नहीं, मगर भोजन के लिए किया जाने लगा। घर बनाने के लिए मिट्टी की ईंटों का उपयोग होने लगा। कई घरों की बस्तियाँ गाँवों में तब्दील होने लगीं।

आज जहाँ बलूचिस्तान है वहाँ मेहरगढ़ में लगभग 7000 से 3800 ईसा पूर्व तक ऐसी शुरुआती ग्राम सभ्यता बसने लगी। मुख्यतौर पर गेहूँ उपजाया जाता था। बैल, भेड़ पालतू थे। मगर जंगली भैंसे का शिकार किया जाता था। भैंस तब तक पाली नहीं जाती थी। यह ग्राम सभ्यता पश्चिम एशिया से प्रभावित रही होगी। यहाँ मिट्टी के बर्तन नहीं बनाए जाते थे। फिर भी सजने-सँवरने का उनको शौक था। वहाँ शंखों, सीपियों और जानवर की हड्डियों से बने आभूषण मिले हैं।

खेती ज़्यादा फैल गई। तब अनाज के गोदाम बनाए जाने लगे। सिंचाई का थोड़ा प्रबन्धन होने लगा। कपास उगाया जाने लगा। मिट्टी के बेढंगे बर्तन बनने लगे। पश्चिम एशिया में कुम्हार का चाक ईजाद हुआ। और सब ओर फैलने लगा। 6000 साल पहले मेहरगढ़ में कुम्हारी चाक उपयोग में लाया जाने लगा। इससे काम की गति बढ़ी। बर्तन ज़्यादा टिकाऊ, सुन्दर और तरह-तरह के आकार के बनने लगे। मानव ने बुनना सीख लिया। कपड़े बुने जाने लगे। यह शुरुआती ग्राम सभ्यता के बाशिन्दे पश्चिम एशियाई मूल के नहीं थे। वे दक्षिण पूर्वी या दक्षिण एशियाई रहे होंगे।

करीब 4000-3800 ईसा पूर्व में मेहरगढ़ की खेती में पश्चिम से आए काँसे का इस्तेमाल करने वाले मानव हावी होने लगे थे। काँसे से वे ज़्यादा धारदार हथियार बना पा रहे थे। स्थानीय आबादी पर उनकी हुकूमत आसानी से स्थापित हो गई। इस काल के मानव अवशेष पश्चिम एशियाई मूल के मानव समुदायों से मेल खाते हैं। क्योंकि अब वे यहाँ आकर बसने लगे थे। खेती फैलने लगी थी। उत्पादन बढ़ने लगा।

बर्तन बनाने की कला और विकसित होने लगी। लोग अब मिट्टी के अलावा ताँबे और काँसे का भी उपयोग करने लगे थे। चीज़ें ज़रूरत भर के लिए ही नहीं बनाई जा रही थीं। कला और रचना के आनन्द के लिए भी बर्तन

बनाए जाने लगे थे। खेती से लोगों को अब खाली समय मिल जाता था। शायद इसीलिए 'शौक' की शुरुआत हुई होगी। शौक से कुछ बनाने की खुशी कितनी अलग, अद्भुत होती है! लेकिन कारीगरी और कृषि जीवन ने कई नई तरह की बीमारियों को जन्म दिया। कार्यस्थल के धुएँ और कृषि तथा पशुपालन से पैदा होते जीवाणुओं ने इंसान की सेहत पर असर करना शुरू किया। शायद इस तरह के कई कारणों से मेहरगढ़ की सभ्यता धीरे-धीरे खत्म होने लगी।

पंजाब के पश्चिमी हिस्से में रावी नदी के पास एक पशुपालक सभ्यता थोड़े दिन आबाद रही। गुजरात, मेवाड़ और इलाहाबाद के पास भी कृषि ग्राम सभ्यता 2500 ईसा पूर्व में बसी। दस हज़ार साल पहले चीन ने धान उगाना सीख लिया था। पश्चिम बंगाल के बर्धमान ज़िले में चार हज़ार साल पहले धान की खेती के चिन्ह मिलते हैं। ज़ाहिर है कि चीन से होते-होते बंगाल तक धान उगाई का तरीका पहुँचा होगा। 4000 साल पहले कश्मीर घाटी में शिकार की जगह खेती ने ले ली। उत्तर भारत की शुरुआती ग्राम खेती सभ्यता चीन से काफी प्रभावित रही। हालाँकि उसका जुड़ाव सिन्धु घाटी से भी बना रहा।

दक्षिण भारत में कर्नाटक, आँध्रप्रदेश, तमिलनाडु ने इन सबसे जुदा, खुद ही खेती और पशुपालन करना शुरू कर दिया। वे बर्तन बनाने के लिए चाक से मिलते-जुलते अर्धविकसित ढाँचे का उपयोग करते थे।

इससे पता चलता है कि मानव समूहों ने अपनी ज़रूरत के हिसाब से चीज़ों को खोजा, बनाया, एक-दूसरे से सीखा, प्रकृति से सीखा। कोई भी किवाड़ लगाकर कुछ नहीं सीख सकता। ऐसे तो बहुत समय तक ज़िन्दा भी नहीं रहा जा सकता। हर सभ्यता ने एक-दूसरे की खोज को बढ़ाया। कभी उसी को और तराशा। अपने नए माहौल में उपयोग के लायक बनाया।

भारत हमेशा सीखने के लिए तैयार रहा। किसी से धान उगाना, तो किसी से चाक का इस्तेमाल करना सीखा। इसी सीखने-सिखाने की ललक, कौतूहल से सभ्यताएँ विकास करती हैं। हमारी तहज़ीब को खास बनाती हैं।

सरहद पर झूलो

लोकेश मालती प्रकाश
चित्रः एलन शॉ

सैकड़ों साल पहले इन्सान ने लकीरें खींचने का खेल शुरू किया। इस खेल में इलाके बँटे, हदें बनीं। दीवारें बनीं। देश बने। सेनाएँ बनीं। बन्दूकें, तोपें बनीं। परमाणु हथियार बने। आज इन्सान इन्हीं सीमाओं के लिए मरने-मारने पर उतारू है!

अपने इलाके तो जानवर भी बनाते हैं। उस इलाके की हिफाज़त के लिए अपनी प्रजाति के दूसरे जानवरों से लड़ते-भिड़ते हैं। इंसान इस मामले में ज़रा जुदा हैं। इन्सान इन लकीरों को पालता है। इन लकीरों पर मर-मिटता है जिन्हें उसके अपने पुरखों ने भी नहीं बनाया है! जैसे, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बीच की लकीर यानी सरहद रैडक्लिफ नाम के एक अँग्रेज़ अफसर ने बनाई। दोनों मुल्क आज तक उस लकीर की लड़ाई में उलझे हुए हैं।

हाल ही में अमरीका और मेक्सिको की सरहद पर कुछ शानदार हुआ। बेहतर ज़िन्दगी और रोज़गार की उम्मीद में मेक्सिको से लोग अमरीका जाते रहे हैं। मेक्सिको से आने वाले प्रवासियों को लेकर अमरीका में तनाव आता रहा है। अमरीकी सरकार ने मेक्सिको से लगी अपनी सरहद पर दीवार बनाई। ताकि मैक्सिकन बिना सरकार की इजाज़त के वहाँ आ न सकें।

जुलाई के आखिरी हफ्ते में कुछ मीठी खबरें आईं। अमरीका के टेक्सास और मेक्सिको के सीउडाड हूआरे शहर से लगी सीमा पर लोहे की फेंस में चटख गुलाबी सीसॉ यानी झूले लगा दिए गए हैं। दोनों मुल्कों के बच्चे ही नहीं बड़े भी इन झूलों का लुत्फ उठा रहे हैं!

यह आइडिया रोनाल्ड राएल और वर्जिनिया सैन फ्रेटेलो का है। राएल कैलिफोर्निया यूनीवर्सिटी, बर्कले में स्थापत्य के प्रोफेसर हैं। और फ्रेटेलो सैन जोस स्टेट यूनीवर्सिटी में डिज़ाइन के एसोसिएट प्रोफेसर हैं। राएल ने अपनी एक इंस्टाग्राम पोस्ट में क्या खूब लिखा है - इन झूलों से लोग समझेंगे कि एक तरफ होने वाली घटनाओं का सीधा असर दूसरी तरफ होता है।

देखना

सुन्दर सरुक्कई
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

मान लो, तुम्हारे सामने एक कुर्सी रखी है। तुम्हें पता चला कि वहाँ कुर्सी रखी है क्योंकि तुम उसे देख पा रहे हो। हम सबको लगता है कि वहाँ एक कुर्सी है क्योंकि हम सब उसे देख सकते हैं।

लेकिन हमें वहाँ दिख क्या रहा है - कुर्सी का रंग या उसका आकार? या दोनों एक साथ दिख रहे हैं?

क्या तुम्हारा दोस्त भी कुर्सी को वैसे ही देख रहा है जैसे तुम देख रहे हो? तुम्हें कैसे पता? क्या तुम कह सकते हो कि यह कुर्सी सबको एक जैसी दिखती है? कैसे?

अगर तुम्हारी दोस्त कुर्सी के पीछे बैठी है और तुम सामने। क्या तुम दोनों को वह एक जैसी दिख रही है?

मान लो, तुम इस कुर्सी को अलग-अलग तरफ से और अलग-अलग दूरियों से देख पा रहे हो। तो क्या हर बार तुम्हें वह कुर्सी कुछ अलग दिखती है? क्या रात में कुर्सी कुछ अलग दिखेगी?

अगर हर बार कुर्सी अलग दिख रही है तो कैसे पता कि तुम एक ही कुर्सी को देख रहो हो? क्या अलग-अलग जगहों से देखने पर हर बार वह तुम्हें एक नई कुर्सी दिखती है? अगर नहीं, तो ऐसा क्यों है कि एक ही कुर्सी अलग जगह से देखने पर और अलग रोशनी से देखने पर अलग दिखती है?

ऐसा सिर्फ कुर्सी के मामले में ही नहीं है। अपनी ज़िन्दगी के बारे में सोचो। जब तुम पैदा हुए थे, तुम बहुत छोटे थे। तब तुम ऐसे नहीं दिखते थे जैसे अब दिखते हो। तुम्हारे काम, भाषा, लम्बाई और वज़न काफी बदल गए हैं। हर साल तुम अलग-अलग दिखते जा रहे हो। फिर हम ऐसा क्यों मानते हैं कि तुम वही हो जो बहुत साल पहले छोटे-से पैदा हुए थे?

जब कुछ चीज़ें बदलती हैं तो क्या उनमें कुछ ऐसा है जो बदलता नहीं। वो स्थायी रहता है। वह क्या है जो पैदा होने से अब तक तुम्हारे शरीर और बुद्धि के बदलने के बाद भी नहीं बदला? एक पत्ती है जो अब भूरे रंग की हो गई है। लेकिन पहले वो हरी थी। ज़मीन पर गिरने के बाद वो धीरे-धीरे भूरी हो गई। पत्ती का रंग बदल गया है, फिर भी हमें लगता है कि यह वही पत्ती है। हम उसे कोई दूसरी पत्ती क्यों नहीं कहते? इसमें क्या ऐसा है जो नहीं बदला और क्या है जो बदल गया है?

II

हमारे लिए देखना एक स्वाभाविक क्रिया है। बस आँखें खोलीं और देख लिया। लेकिन देखना इतना भी सीधा काम नहीं। आँखें खोलते ही हम तय कर लेते हैं कि फोकस कहाँ करना है। जैसे, तुम कई दिनों से अपनी क्लास में बैठ रहे हो। क्या तुमने इस कमरे को पूरा-पूरा देख लिया है? हर तरह से देख लिया है। तो अपने देखे को एक कॉपी में लिख लो। लिखते समय कमरे की तरफ मत देखना। तुमने जो लिखा है क्या तुम्हारे दोस्तों ने भी वही लिखा है? उन्होंने अलग क्या लिखा है? अगर हम खुद को ध्यान से देखने के लिए प्रशिक्षित कर लें तो कितनी सारी नई चीज़ें हमें दिखेंगीं!

III

देखते तो हम आँखें बन्द करके भी हैं। अपनी आँखें बन्द करके देख लो। तुम्हें किसी रंग की कुछ रंगतें दिख रही हैं या घुप अँधेरा है? आँखें जब पूरी तरह से बन्द होती हैं तब भी क्या कभी कुछ चीज़ें दिखती हैं, जैसे धागे का

टुकड़ा या कोई छोटा-सा धब्बा?

हम सपने में भी तो कितना कुछ देख लेते हैं। लोगों को देख लेते हैं। लोगों को बात करते सुन लेते हैं। सपने रंगीन और रोमांचक हो सकते हैं। लेकिन सपने देखते हुए हमारी आँखें बन्द होती हैं। बन्द आँखों से हम सपने कैसे देख लेते हैं? क्या हमारे अन्दर भी कोई आँख है? क्या देखने के लिए आँखों की सचमुच ज़रूरत होती है? क्या जो लोग देख नहीं सकते वो सपने देखते हैं? क्या वो सपने में वे तस्वीरें देख पाते हैं?

खुली आँखों से देखने और सपने देखने में क्या अन्तर है? अगर तुम्हें कुछ सूझे तो बताना।

बन्द आँखों से एक और तरह से देखा जा सकता है। सपने तो हम सोते हुए देखते हैं। लेकिन हम दिन में भी सपने देखते हैं। कई बार क्लास में बैठे-बैठे हम अपने ख्यालों की दुनिया में खो जाते हैं। जिसे हम कल्पना कहते हैं। क्लास में बैठे-बैठे दोस्तों के साथ फुटबॉल खेलने के ख्याल में जा सकते हो। खुद को दौड़ते-भागते-किक मारते देख सकते हो। जबकि बैठे तो तुम एक जगह पर हो, चुपचाप।

क्या कल्पना भी एक तरह का देखना है? क्या कोई खास तरह की आँखें हमें कल्पना करने में मदद करती हैं? हमारी कल्पना हमारे देखने से किस तरह अलग है? कमरे में कुर्सी को देखना और कमरे में हाथी की कल्पना करना, किस तरह से अलग हैं?

अपने जवाब हमें ज़रूर भेजना। ताकि हम इन सवालों के बारे में कुछ आगे सोच पाएँ।

घर

प्रभात

चित्रः भार्गव कुलकर्णी

कली जो खिलती नहीं आज खिली-खिली-सी थी। गिरगिट ने उसे सड़क पार कर आते देखा तो मुस्कराया, "हैलो।"

"हैलो।" छिपकली ने कहा।

"तुम यहाँ?" गिरगिट का गला फूलकर पिचका।

"तुम यहाँ से क्या मतलब है तुम्हारा?" छिपकली बोली।

"दीवार पर रहने वाली को सड़क पर देखकर, इतना तो पूछा ही जा सकता है।" गिरगिट ने रंग बदलते हुए कहा।

"मैं आज घर बदल रही हूँ।" छिपकली ने मुस्कराते हुए कहा। "तुम श्रीमान फरहाद को तो ज़रूर जानते होगे!"

"हाँ, हाँ पहले जब भी हम मिले हैं, तुमने उनका ज़िक्र किया है। क्या हुआ उन्हें?" गिरगिट ने गिरगिटी आवाज़ में कहा।

"हुआ कुछ नहीं बुद्धू। वे जिस किराए के कमरे में रहते थे। अब नहीं रहते। उन्होंने अपना नया घर बना लिया है।" छिपकली ने कहा।

"तो तुम्हें इससे क्या?" गिरगिट गिरगिटियाया।

"मेरा जीना दूभर हो गया है और तुम कह रहे हो तुम्हें इससे क्या! तुम कभी रहे होते उनके साथ उस किराए के कमरे में तो कुछ समझ पाते। कितने सलीके से रहते थे हम। उनके पास किताबों की बड़ी-बड़ी आलमारियाँ थीं। वे किताबों के आगे रहते थे, मैं किताबों के पीछे। मैं कितनी ही बार उनसे कपड़ों की गली में मिली। बर्तनों की गली में मिली। दराज़ मार्केट में मिली। डस्टबिन में मिली। झाड़ू के नीचे मिली। हमेशा मुस्कराए। मेरा तजुर्बा कहता है कि छिपकलियों के पीछे झाड़ू लेकर पड़े रहने वालों में से वो नहीं है।"

"होते हैं कुछ लोग।" गिरगिट ने उबासी लेते हुए कहा।

"उनसे पहले मैं श्रीमती शान्तिदास के साथ कुछ दिन रही थी। पूरी अशान्तिदास थीं वे। मुझे देखते ही चिल्लाती थीं - ऊईईईई। घिग्गी बँध जाती थी उनकी। कहती थीं - सुशान्तो जल्दी आओ, इसे भगाओ।"

"मैं उनके साथ एक सप्ताह नहीं टिक सकी। पर कहते हैं ना जो वास्तव में भला होता है उसे भले लोग ज़रूर मिलते हैं। फलस्वरूप मेरी ज़िन्दगी में श्रीमान फरहाद आ ही गए।" कहते हुए छिपकली के चेहरे पर वैसी ही असीम शान्ति थी जैसी संगमरमर की मूर्तियों में होती है।

"ओह छिप्पू मैं तुम्हारा दर्द समझ सकता हूँ। कितनी दफा मैं खुद ऐसे अनुभव से गुज़रा हूँ।" गिरगिट ने कहा।

"सो, अब मेरा इरादा श्रीमान फरहाद के घर में ही बचा-खुचा जीवन गुज़ारने का है।" छिपकली ने एक ही वाक्य में बातचीत समाप्त करते हुए कहा।

"विचार अच्छा है।" गिरगिट बोला।

"अच्छा है ना? वक्त मिले तो आना कभी।" कहते हुए छिपकली आगे बढ़ गई।

"ज़रूर-ज़रूर मुझे तुमसे मिलने आना अच्छा ही लगेगा।" हाथ हिलाते हुए गिरगिट छिपकली को जाते देखता रहा।

छिपकली नीम सराय के मकान नम्बर 205 के गेट पर पहुँची। दीवार पर चढ़ी।

"सुनो।"

"छिपकली ने चारों ओर नज़र घुमाकर देखा कि आवाज़ किधर से आई।

"अरे और ऊपर। इधर कोने में।"

छिपकली ने कोने में देखते हुए कहा, "मैं तो सोचती थी नए घर में मैं ही सबसे पहले पहुँच रही हूँ। तुम कब पहुँचीं?"

"मैंने कल ही शिफ्ट किया है।" मकड़ी ने कहा।

"तो और कौन-कौन है यहाँ?" छिपकली ने पूछा।

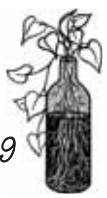

"दस-पन्द्रह मक्खियाँ और सौ के आसपास मच्छर।" मकड़ी ने बताया।

"हाय!" छिपकली ने मक्खी-मच्छरों की ओर हाथ हिलाते हुए कहा।

"हाँ हूँ ही..ही।" मक्खी-मच्छरों ने कुछ घबराई-सी हँसी हँसते हुए जवाब दिया। और वही मुहावरा दोहराया जो इंसानों में खासा प्रचलित है, "हम जहाँ जाना चाहते हैं। हमारी बदकिस्मती हमसे पहले वहाँ पहुँच जाती है।"

छिपकली ने जाने कैसे सुन लिया। मच्छरों को सुनाते हुए मकड़ी से कहने लगी, "कुछ लोग खुद तो लोगों का खून ही पिएँ और दूसरों से चाहें कि वे शाकाहारी रहें। वाह रे ज़माने!"

नए मकान की नई सफेद झक दीवार में पुताई की पपड़ी में से सिर निकालते हुए काली चींटी ने कहा, "आप लोग इतनी तेज़ आवाज़ में बात कर रहे हो कि मेरे बच्चे सोने के बजाय करवट बदल रहे हैं।"

"ओह! माफ करना।" छिपकली ने मकड़ी की तरफ सवालिया आँखों से देखते हुए कहा।

"पता नहीं कब से रह रही है। मैं भी पहली बार ही देख रही हूँ।" मकड़ी ने फुसफुसाते हुए कहा।

"चाय तैयार है। और मैं पड़ोसी होने के नाते पहली मुलाकात के मौके पर आप दोनों को एक साथ बुला रही हूँ।" ततैया बोली।

मकड़ी और छिपकली को खिड़की के परदे के पीछे ततैया के यहाँ आकर अच्छा ही लगा।

"और कौन-कौन है यहाँ।" छिपकली बोली।

"ज़्यादातर से तुम मिल ही चुकी हो। इनके अलावा एक तो चूहा है। लेकिन वो पूरे समय नहीं रहता है। आता-जाता रहता है। कभी-कभी एक, दो या तीन दिन के लिए गायब भी हो जाता है।"

"क्या काम करता है वह?"

"सुना है पत्रकार है।"

"तभी।"

"उसके अलावा कोई और?"

"नहीं और कोई भी नहीं है। चिड़ियाँ भी आती हैं वैसे दिन में लेकिन शाम को चली जाती हैं। एक गिलहरी है वो बाहर रहती है अन्दर रहने वाले केवल हम ही हैं।"

"और श्रीमान फरहाद?" छिपकली ने ततैया और मकड़ी दोनों की ओर देखते हुए पूछा।

"क्या तुम उनकी बात रही हो जो शरीर पर से एक तरह के कपड़े उतार कर दूसरी तरह के कपड़े पहनते रहते हैं? पर वो तो केवल रात में रहने के लिए यहाँ आते हैं। उसमें भी ज़्यादातर समय सोए रहते हैं। थोड़ी देर के लिए जागते हैं तो किताब उठाकर पढ़ने लग जाते हैं। सच पूछो तो वे बहुत थोड़ी-सी जगह लेते हैं इस मकान में। हमारी तरह दीवारों, खिड़कियों या छत से उनका खास लेना-देना नहीं है।" ततैया ने कहा।

"खास क्या, उनका तो कुछ भी लेना-देना नहीं है।" मकड़ी को बहुत कम समय में ही यह बात समझ आ गई थी, इसलिए ज़ोर देकर बोली।

चाय के बाद अपने-अपने ठिकानों की ओर रुख करने से पहले मकड़ी, छिपकली और ततैया ने एक दूसरे को अपने-अपने पते बताए।

देर रात श्रीमान फरहाद आए। उन्होंने दो कमरे, किचन और बरामदे वाले अपने नए मकान में हर जगह की लाइट जलाई। खाना बनाकर खाया। पानी पिया। मच्छरदानी लगाई और लाइटें बुझाकर सो गए।

सोते ही उन्हें सपने आना शुरू हो जाते हैं। उनके सपने में चल रहा था कि बुखारी में रखी पुरानी मटकी के पास छिपकली ने अण्डे दिए हैं। कमरों के पीछे गैलरी के कोने में मकड़ी ने बहुत बड़ा जाला तैयार कर लिया है जिसमें कुछ मक्खियाँ सुखाई हुई हैं। यह वैसा ही था जैसे आदिवासी अपने छप्परों पर मछलियाँ सुखाते हैं। फरहाद उस जाले का फोटो क्लिक कर रहे हैं। वे बहुत

खुश हैं कि नए घर में उनका परिवार बढ़ रहा है और सभी खुश हैं।

वे सपने देखते-देखते ही जाग जाते हैं। सुबह जागे। पलंग के नीचे रखी चप्पलों में पैर दिए तो उन्हें गुदगुदी हुई। उन्होंने देखा कि तीन नन्हीं मेंढकियाँ चप्पल पर एक दूसरे से सटी बैठी हैं। उन्होंने चप्पल को आहिस्ते-से उठाया। तीनों मेंढकियों को दूसरे हाथ की हथेली पर ले लिया। उनकी हथेली पर वे किसी तीन पंखुड़ियों वाले हरे फूल की तरह लग रही थीं। वे कुछ देर उन्हें हथेली पर लिए-लिए बाहर हवा में टहलने लगे। वे तब तक टहलते रहे जब तक कि वे तीनों एक-एक कर कूद न गईं।

जब वे घर में खेलने लगीं, वे आइने के सामने खड़े होकर मुस्कराने लगे। तभी उन्हें आइने में छिपकली दिखी।

नए घर में उन दोनों की यह पहली मुलाकात थी।

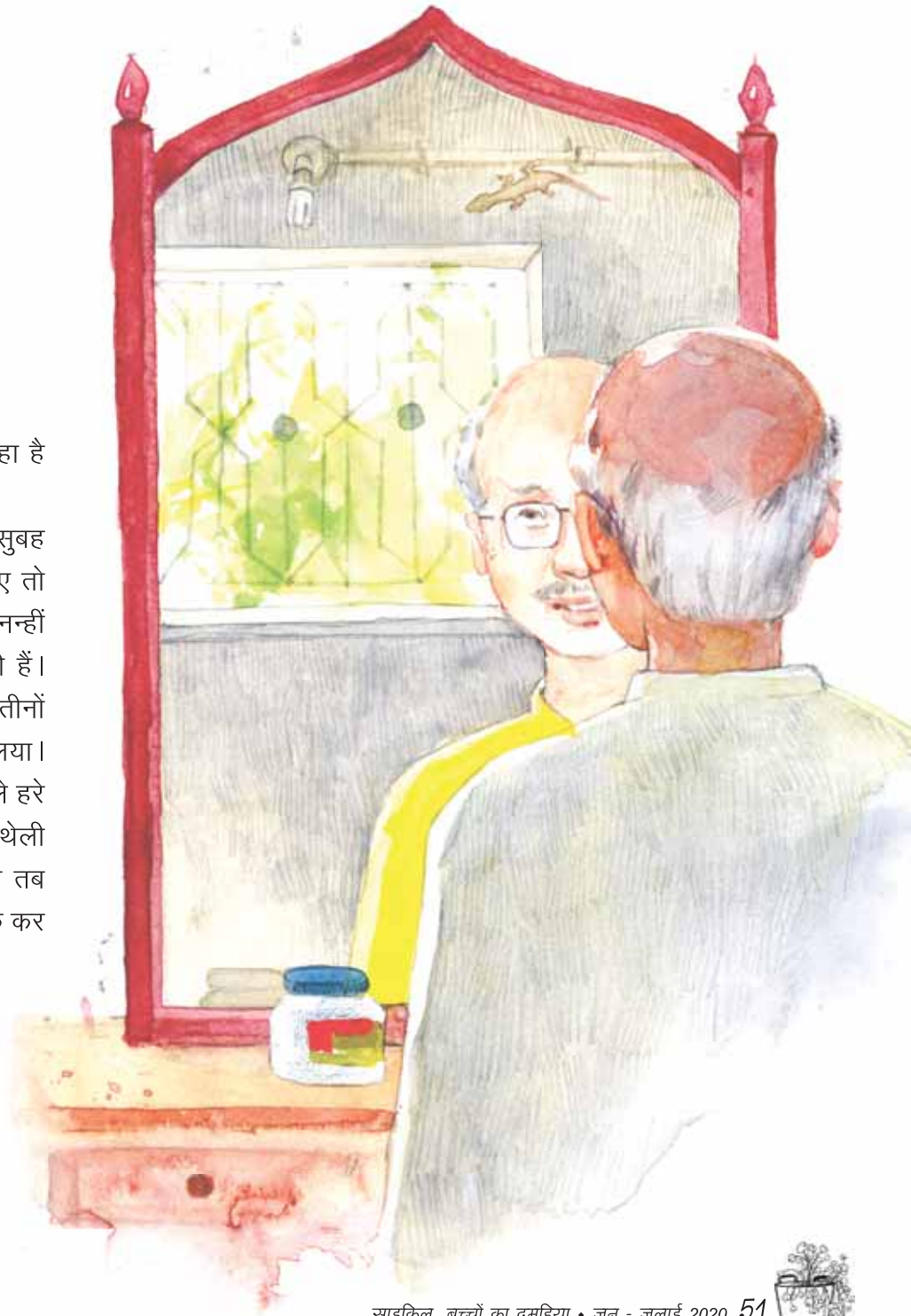

बड़ी दीदी

लवलीन मिश्रा
चित्रः प्रोइती रॉय

आठ साल तक
पूरा घर पूछता था
सिर्फ मेरे हाल
छोटी का खाना

छोटी के बाल
छोटी का बिस्तर
छोटी का रुमाल
छोटी की गुड़िया
मेरे मखनी गाल
बजती थी सिर्फ
छोटी की एक ताल

एक दिन
मम्मी गई अस्पताल
और ले आई
ये चार किलो का बबाल

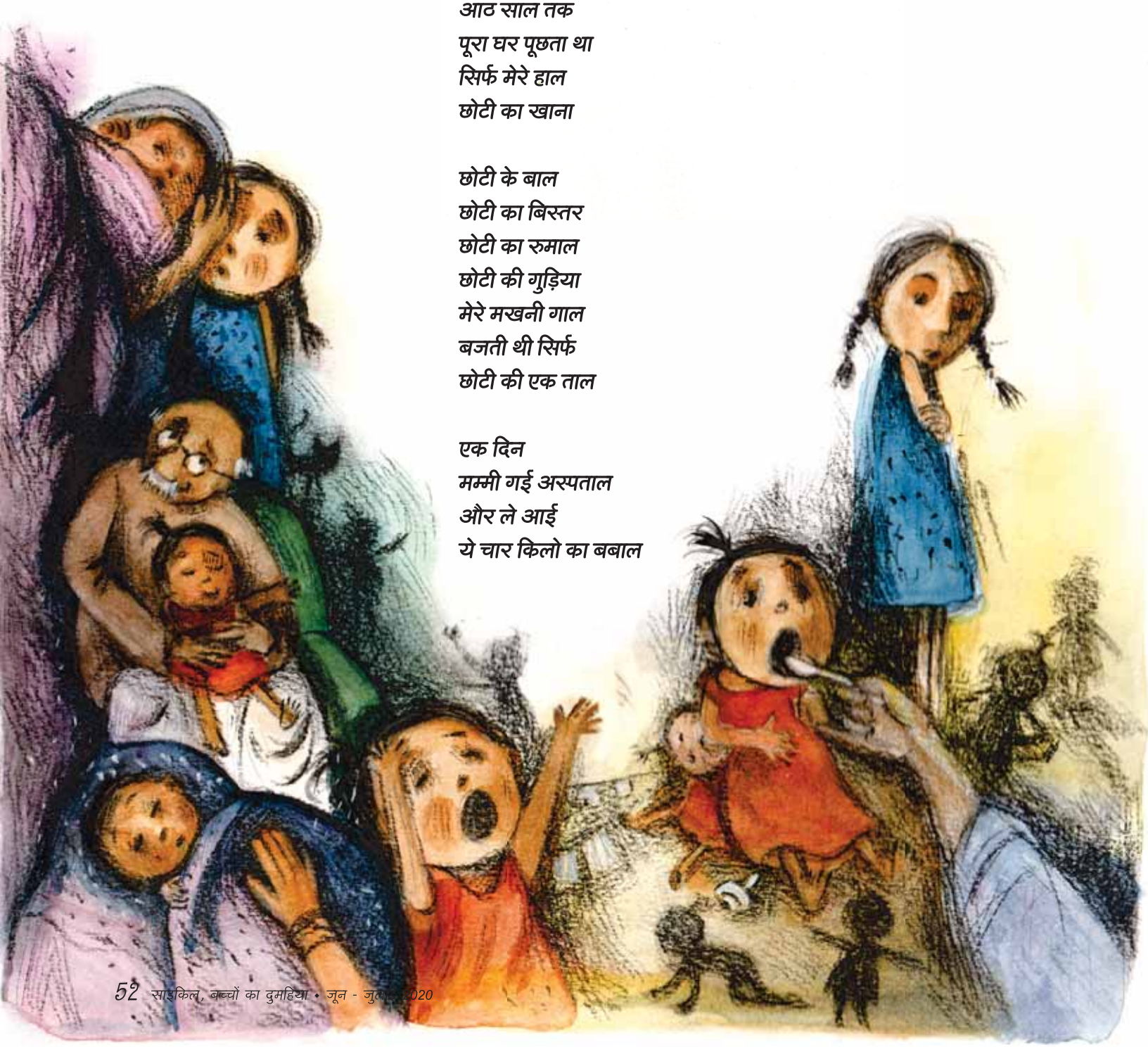

रातों रात
मैं बन गई बड़ी बहन
वो मम्मी के संग सोए
मुझसे न होता सहन

वो महारानी
चौबीस घण्टे है सोती
जागे तो
सिर्फ है रोती
गीली करे
दादाजी की धोती
फिर भी कहलाए
उनकी लाड़ली पोती

कल सुबह मम्मी ने
उसे मेरी गोद में बिठाया
पता नहीं कब कैसे
मैंने उसे गले लगाया
रोने लगी तो
बहलाया फुसलाया
फिर
लोरी गाकर सुलाया
क्यों न करूँ?
बड़ी बहन हूँ उसकी
न कि कोई पराया...

मेले में एक पाँच साल का बच्चा अपनी माँ से बिछुड़ गया। भीड़ में उसे एक पुलिसवाला दिखा। बच्चा उसके पास जाकर बोला, "क्या आपने एक ऐसी औरत को देखा है जिसके पास मेरे जैसा बच्चा नहीं था?"

गैब्रियल गार्सिया मारकेज़

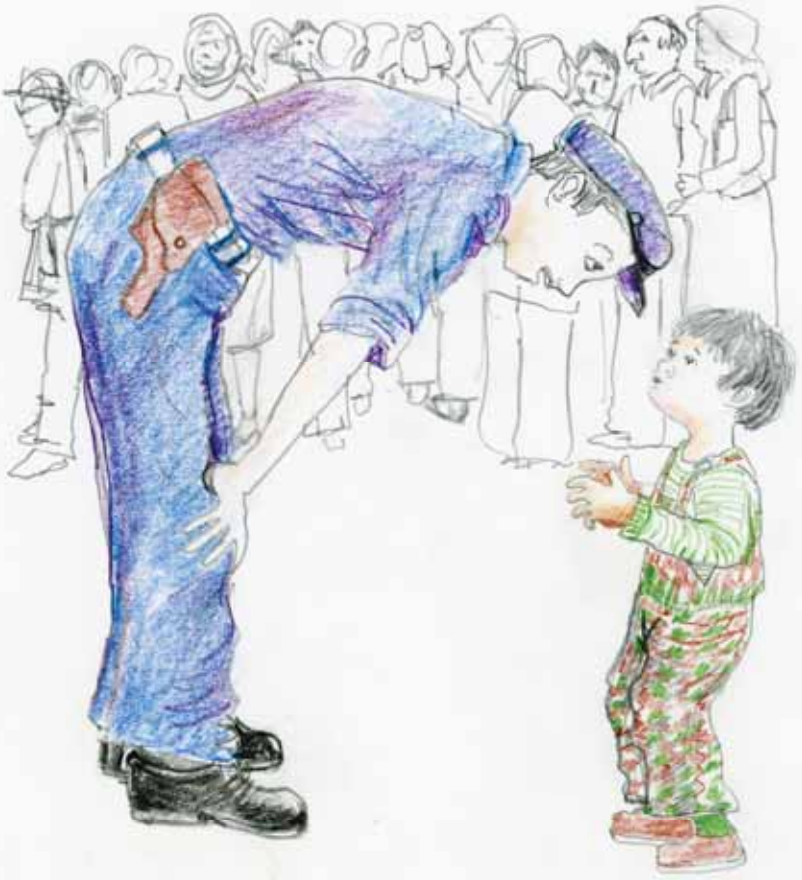

कांचीपुरम के पल्लव

सुभद्रा सेनगुप्ता
चित्रः तापस गुहा

भाग-2
छठी शताब्दी

पल्लवों की राजधानी कांचीपुरम में बड़ा होना कैसा होता होगा? क्या वो उत्तर भारत के शहर पाटलिपुत्र और वाराणसी से अलग होगा?

कई मायनों में अलग था भी। क्योंकि वहाँ की ज़मीन, वहाँ का मौसम तेज़ गर्मी की वजह से अलग था। गाँव में किसान अलग तरह के अनाज, फल और सब्ज़ियाँ उगाते थे। तो खाना तो अलग होता ही होगा। बच्चों का जीवन एक-सा ही था। ज़्यादातर लड़के अपने पिता के साथ खेतों में, दुकानों पर और शिल्प में मदद करते थे। कपड़ा और मटके बनाने में। लड़कियाँ घर पर माँ की मदद करती। ाना बनाना और घर का काम सीखती थीं।

शहर और मन्दिर

पल्लव राजा महान निर्माता थे। उनके महल लकड़ी और ईंटों के बनते थे। मन्दिर वो पत्थर के बनवाते थे। जो आज भी वैसे ही हैं। मन्दिर के दरवाज़े खुलते ही भक्तों का आना-जाना शुरू हो जाता। फिर मन्दिर के आसपास एक छोटा-सा कस्बा पनपने लगता। पूजा के लिए फूल, मिठाइयों और फलों की दुकानें खुल जातीं। दुकानों पर भूखे राहगीरों के लिए डोसा और वड़े तले जाते थे। साड़ी, धोती और मिट्टी का सामान बेचते बुनकर और कुम्हार भी होते थे। नाट्य मण्डप में नर्तक, गायक, संगीतकार और कवि मन्दिर में अपनी कलाएँ दिखाते और त्योहार में हिस्सा लेते।

मन्दिर शहर का केन्द्र बन जाता। कांचीपुरम, चिदम्बरम, और रामेश्वरम जैसे कई शहर आज भी फलफूल रहे हैं। यहाँ आज भी देशभर से भक्त आते हैं। रेस्तरां में खाते हैं। होटलों में रहते हैं। टैक्सी में सफर करते हैं। मूर्तियाँ और साड़ियाँ खरीदते हैं। आज भी ये शहर के लोगों के लिए आजीविका का हिस्सा है। साथ ही, संगीत और नृत्य के कार्यक्रम होते रहते हैं। रामेश्वरम के रामनाथ स्वामी मंदिर में, हमें रामायण की कहानी याद आती है। और थंजावुर के वृहदेश्वर में दीवारों पर भरतनाट्यम की मुद्राएँ तराशी हुई हैं। बहुत से मन्दिरों की दीवारों पर चित्रकारी और राज्य के इतिहास को, राजाओं और रानियों को तराशा हुआ है।

ये सब शुरू होता है पल्लवों से। जिन्होंने पहली बार पत्थर से मन्दिर बनाए। तब तक मन्दिर छोटे होते थे। ईंटों और लकड़ी से या फिर चट्टान को तराश कर बनाते थे। अजन्ता और एलोरा इसके उदाहरण हैं। पहले गुफाएँ बनाई गईं। फिर बौद्ध भिक्षुओं ने उनकी दीवारों पर सुन्दर चित्रकारी की। पल्लव वास्तुकारों ने ऐसी तकनीक विकसित कर ली थी जिससे पत्थर के मन्दिर बनाए जा सकते थे। उस समय सीमेण्ट तो था नहीं। वो पत्थर को इस तरह तराशते थे कि दो पत्थर एक-दूसरे के साथ अटककर मज़बूती से जुड़ जाते थे। ये मन्दिर आज भी खड़े हैं।

मामल्लपुरम का समुद्र तट पर बना मन्दिर सबसे पुराना है। यह आज भी ज्यों का त्यों है। उसकी ऊँची चोटी आसमान छूती लगती है। एक समय में सात ऐसे मन्दिर थे। इनमें से छह मन्दिर डूब गए। दीवारों पर भगवानों की, नाचती महिलाओं की और सैनिकों की मार्च की सुन्दर नक्काशी हुई है। साथ में नंदी की प्यारी मूर्तियाँ मेड़ पर बैठी आपका स्वागत कर रही होती हैं।

डोसा या बीसी भेले भात?

आजकल इडली, डोसा, सांभर और वड़ा देने वाले रेस्तरां देश के हर हिस्से में हैं। इसलिए हमें लगता है कि पल्लवों के समय में वो सिर्फ डोसा खाते थे। असल में, हर इलाके का अपना खाना होता है। यह वहाँ पैदा होने वाली चीज़ों पर निर्भर करता है। केले के पत्ते पर खाना परोसने का तरीका भी जुदा-जुदा है। गेहूँ नहीं उगता था और ज़्यादातर लोग चावल खाते थे। हर इलाके में चावल पकाने का तरीका अलग होता था। कर्नाटक में बीसी भेले भात पकता तो तमिलनाडु में चावल पीस कर इडली और डोसा बनता था। इसे मीठे दूध या पयास्सम में मिलाया जाता। केरल में चावल के चीले बनते जिन्हें अप्पम कहते थे।

कर्नाटक की दाल को सांभर नहीं हुली कहते थे। उसका मसाला भी अलग होता था। इडली डोसे के बाद आई। इंडोनेशिया में भी इडली जैसा पकवान है जिसे केडली कहते हैं।

पल्लव राज्य गरम प्रदेश में था। इसलिए यहाँ बहुत सारे मसाले होते थे। जैसे, काली मिर्च, खुशबूदार इलाइची, लौंग और जायफल। इमली तो हर जगह होती थी। जिससे हमारे खाने में खट्टापन आता। और ताड़ की चीनी उनमें मिठास डाल देती। दक्षिण भारत में नारियल का काफी इस्तेमाल होता है। नारियल समुद्र किनारे उगता

है। कढ़ी पत्ता भी खाने में डाला जाता है जो खाने में कुर्कुरापन जोड़ता है। तमिल लोग इन पत्तियों को कारी कहते हैं। वहीं से यह शब्द करी बना। मछुआरे हर सुबह समुद्र में जा कर मछली, केकड़े और झींगे पकड़ते थे जो दोपहर के भोजन का हिस्सा बनते।

खाने की शान में कवियों ने कविताएँ लिखीं। एक मलयालम किताब पेरुम्पनुरु में अप्पम का ज़िक्र है। यह पाँचवीं सदी में लिखी गई। मदुरई के एक कवि ने डोसे पर ही एक गीत लिखा।

जादुई बुनाई

भारत अपने कपड़े के लिए हमेशा से ही मशहूर रहा है। बुनकरों के बनाए तरह-तरह के सूती और रेशमी कपड़ों की सूची बहुत ही लम्बी है। हर इलाके के अनोखे पैटर्न जैसे, आंध्र प्रदेश में कलमकारी और पोचमपल्ली, तो उड़ीसा में इक्कत और कांचीपुरम की बुनाई सबसे ज़्यादा मशहूर थी।

बुनकर का पूरा घर काम में लगता था। लड़कियाँ, महिलाएँ चरखे पर सूत और रेशम का धागा काततीं। फिर धागे के बंडल को इन्द्रधनुष के रंगों में रंगा जाता। बच्चे उन्हें धूप में सुखाते। उसके बाद वो धागा हथकरघे पर लगाया जाता। ठक-ठक की आवाज़ आती रहती और बुनकर धागे से साड़ी या धोती बनाते रहते। कई बार बुनाई में सोने और चांदी के धागे भी पिरो देते।

ये धागे प्राकृतिक रंगों से रंगे जाते। जैसे, फूल और पत्तियाँ और ज़मीनी धातु। नील से नीला रंग मिलता, कुसुम से पीले और लाल के कई रंग मिल जाते। हल्दी संतरे रंग के लिए और सिन्दूर से लाल रंग बन जाता। कपड़े इतनी खूबसूरती से बुने जाते कि उनके नाम भी बहुत काव्यात्मक होते। जैसे, 'हवा से बुना जाल', 'दूध का भाप' और 'मकड़ी के जाले में रेशम'।

मामल्लपुरम के मूर्तिकार

आज अगर तुम मामल्लपुरम जाओ, तो तुम्हें समुद्र किनारे लाइन से झोपड़ियाँ दिखेंगी। तुम पास जाओगे तो चिक-चिक की आवाज़ भी सुनाई देगी। ये छेनी के पत्थर पर पड़ने की आवाज़ है। ये मूर्तिकार हैं जो पल्लवों के समय से यहाँ काम कर रहे हैं। इसलिए मामल्लपुरम में मूर्ति बनाने की सबसे पुरानी परम्परा है। ये लोग भगवान की मूर्तियाँ बनाते हैं जैसे, नृत्यरत काली और शिव के ध्यान की मूर्ति, बाँसुरी बजाते कृष्ण की मूर्ति। गणेश की मूर्तियाँ जिनमें वे नाचते, पढ़ते, लड्डू खाते दिखेंगे...। बच्चे अपने पिता से तराशना सीखते हैं। पहले आसान डिज़ाइन तराशते। फिर मूर्तियों के कपड़े तराशते। बहुत सालों के अभ्यास के बाद एक दिन वो चेहरा तराशते। तब वो मूर्तिकार बन जाते जो पत्थर पर जादू कर दे।

सीरिया की बेटी

रचना तथा चित्रः मैत्रेयी कुलकर्णी

टर्की का वह एयरपोर्ट ठसाठस था। इसी भीड़ में मैं फ्लाइट के इन्तज़ार में छह-सात घण्टे बिता चुकी थी। मुझे समझ आने लगा था कि जगह तो इस फ्लाइट में भी नहीं मिलने वाली है। और अगली फ्लाइट चौबीस घण्टे बाद मिलेगी। इस फ्लाइट में पहले से ही कुछ न कुछ अड़चनें आ रही थीं। टर्की आने-जाने में नौ-दस घण्टे लगते हैं। इस बार पूरा एक दिन लग गया था। मेरे पूरे शरीर में टूटन थी। अकड़ गया था। एक अनिश्चितता बनी हुई थी। इसी ने थकान को और बढ़ा दिया था। अजब-सी बोरियत ने मुझे घेर लिया था। ऊपर से विमान लेट पर लेट होता जा रहा था। मेरे पास टर्की का वीसा भी नहीं था कि कहीं बाहर जाकर घूम ही आऊँ।

मुझे चौबीस घण्टे गुज़ारने थे। फोन की बैटरी खतम हो गई थी। उस पर इंटरनेट भी काम नहीं कर रहा था। कि घर पर आई-बाबा को बता दूँ कि मैं यहाँ इस एयरपोर्ट में बैठी हूँ। मैंने वहीं आसपास की दुकानों पर वाई-फाई के बारे में तफतीश की। मगर कोई रास्ता न निकला। अब विमान के आने का इन्तज़ार करने के अलावा मेरे पास कोई चारा नहीं था। इसी समय मैंने पानी पीने के लिए बोतल की तरफ हाथ बढ़ाया तो पाया कि बोतल में पानी नहीं था।

चार-पाँच दुकानों के बीच एक छोटा कैफे दिखाई दिया। मैंने वहाँ से पानी की एक बोतल उठा ली। पैसे देने के लिए काउण्टर के पास गई तो पता चला कि मेरा कार्ड नहीं चलेगा। अच्छा हुआ कि मैंने तब तक बोतल खोली नहीं थी। मैंने उसे दूसरा कार्ड पेश किया। वह भी नहीं चला। मेरे पास तो उतना कैश भी नहीं था। मैंने सोचा चलो, पानी नहीं पीते। मैंने बोतल वापिस दुकान पर रखी और यह सोचते-सोचते वापिस चलने लगी कि मैंने यात्रा के लिए यही दिन क्यों चुना। मैं एक जगह बैठ गई। सोचती रही और यहाँ-वहाँ देखती रही।

इतने में मुझे लगा जैसे मेरे कँधे पर किसी ने हाथ रखा। मैंने मुड़के देखा। मेरे पीछे एक लड़की खड़ी थी। बेहद सुन्दर। ओवरकोट पहने। उसका चेहरा भर खुला था। वह एक सफेद बुरका पहने थी। वह शान्त थी और उसकी आँखों में एक हँसी थी। इस हँसी पर एक क्षण के लिए मैं सब भूल गई। उसने अपनी पानी की बोतल मेरी तरफ बढ़ाई। "टेक इट, इट्स फॉर यू।" उसने कहा। मुझे

चित्रः तापोशी घोषाल

सूझा नहीं कि क्या बोलूँ। मैंने सिर्फ हँसकर 'थैंक्यू' बोला। पानी का एक घूँट लिया। पानी के उस घूँट ने और उसकी हँसी ने या दोनों ने मिलकर मुझे एक मीठे अहसास से भर दिया था। मैं उसी के साथ जाकर बैठ गई। उसके बाजू में एक छोटा बच्चा था। उसकी आँखें कलियों की तरह उभरी हुई थीं। उसने भी एक ओवरकोट पहना था। उसकी आँखें अनवरत इधर-उधर देखती डोल रही थीं।

मैंने यूँ ही पूछा कि आप कहाँ जा रही हैं? वह बोली, 'सीरिया जा रही हूँ। अपने माता-पिता के पास।' इस जगह का नाम सुनते ही मेरे माथे पर बल पड़ गए। ऐन युद्ध के समय यह वहाँ क्यों जा रही है? क्या कोई ऐसे जाता है? शायद यह सवाल मेरे चहरे पर झलक उठा था। वह बोली कि माँ की तबियत ठीक नहीं है। मैं जाऊँगी तो कुछ मदद हो जाएगी। मैं जो भी सोच रही थी वह जानती चली जा रही थी। मेरे बिना कुछ पूछे वह बता रही थी तो सोचा और बात करूँ। उसके आजू-बाजू के शहरों में युद्ध का शोर था। उसकी माँ का शहर यूँ तो सुरक्षित था। शान्त था पर वहाँ भी डॉक्टर के पास जाना मुश्किल काम था। वहाँ के लोग एक डर के साए में जी रहे थे। जाने कहाँ, कब, क्या हो जाएगा कल्पना नहीं कर सकते थे। अपना घर-बार छोड़कर बाहर जाना तो और मुश्किल था। मगर उसने फिर भी तय किया कि वह माँ-पिता के पास जाएगी। विमान तो छोड़ो टैक्सी या बस की यात्रा भी सुरक्षित नहीं बची थी।

एक अजनबी के सामने वह यह सब बोल रही थी। मैं इसे समझने की कोशिश कर रही थी। और मुझे यह सुनकर अच्छा ही लग रहा था। उसकी मुश्किलों के आगे मेरे विमान के लेट होने वाली समस्या चींटी के बराबर लगने लगी। मुझे तो सिर्फ चौबीस घण्टे देर से आने वाली फ्लाइट की चिन्ता थी। और जब मुम्बई पहुँचूँगी तो एक टैक्सी वहाँ मेरा इन्तज़ार कर रही होगी। बाबा घर पर ही मेरे इन्तज़ार में रुकने वाले थे। माँ ने घर पर गरम-गरम पोहा तैयार कर रखा होगा। मेरा सवाल चौबीस घण्टे का था, पर उसका?

ऊपर से उसके साथ एक छोटा-सा बच्चा है। वह युद्ध के मुँह में जा रही है। अपने माँ-पिता का ख्याल रखने। इस सबके बावजूद वह इतनी शान्त थी कि मेरा कार्ड न चला तो उसने मुझे पानी पेश किया।

कुछ दिनों बाद उसी शहर की युद्ध की खबरें आने लगीं। गिरते घर और जलती इमारतों की फोटो आने लगीं। यानी अब उसका शहर भी सुरक्षित नहीं रह गया था। मेरी आँखों में उसके छोटे-से बच्चे की आँखें झूल गईं। मैंने सोचा, ऐसे कितने ही बच्चे वहाँ होंगे और कितनी ही बेटियाँ होंगी। अपने माँ-पिता का ख्याल रखने। और कितने ही होंगे जो चाहकर नहीं जा पाए होंगे। और कितने पहुँच ही न पाए होंगे।

मैंने युद्ध को पहली बार इतने करीब से जाना था। यूँ तो युद्ध की हर कहानी ही बैचेन करने वाली होती है मगर इस कहानी ने तो मेरे मन में ही घर कर लिया था।

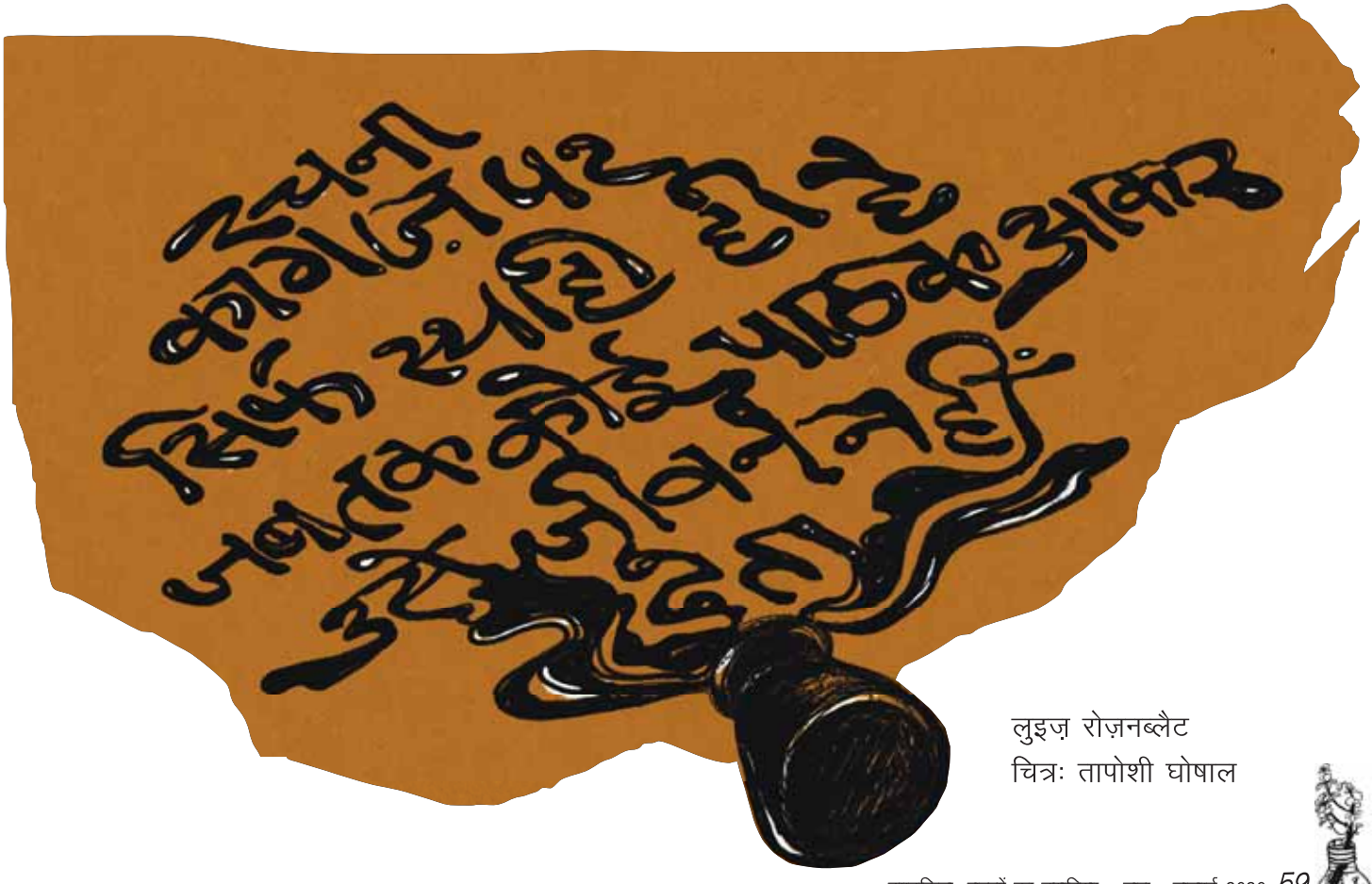

लुइज़ रोज़नब्लैट
चित्रः तापोशी घोषाल

कहानी की कहानी

निधि सक्सेना
चित्रः कृति कोठारी

एक गाँव था। वहाँ न सूरज निकलता था, न चाँद। न उजाला होता, न अँधेरा। धुँधला-सा आकाश रहता। उस पर तारे भी नहीं निकलते। गाँव में न कोई हँसता था, न रोता। न किसी से किसी को मोहब्बत थी, न कोई किसी से रूठता था।

इस गाँव में भी एक बूढ़ा था। बहुत पुराना आदमी। उसे सब कुछ पता था। बूढ़ा अकसर बताता बहुत-बहुत बरस पहले ये गाँव ऐसा नहीं था। यहाँ रात होती थी। चाँद निकलता था। लोग रात भर तारे गिनते और चाँद ताकते थे। बूढ़े पहाड़ी पर बैठ उगता सूरज देखते थे। लोग एक-दूसरे से मोहब्बत करते थे। ज़ोर-से हँसते थे और ज़ार-ज़ार रोते भी थे।

तब इस गाँव में कहानियाँ थीं। फिर वो छोड़कर चली गईं। क्यों गईं यह तो याद नहीं लेकिन लोगों ने कहानियों पर यकीन करना छोड़ दिया था। वो कहते यह तो कहानी है!! कोई असल बात थोड़े है। लोगों ने कहानियों को छोड़ा, तो कहानियों ने भी गाँव छोड़ दिया।

तब से ये गाँव ऐसा मुर्दा हो गया है।

यह सुन लोग जगह-जगह कहानियों की तलाश में जाने लगे। कुछ अकेले गए। कुछ ने टोलियों में कहानियों को तलाशा। कुछ ने कहानियों के लिए बूढ़े को कुरेदा। पता चला कि कहानियाँ तो दरिया पार चली गई हैं।

कुछ को लगा हमें तो तैरना आता है। यह तो आसान है। वो उत्साह में कहानियाँ लाने दरिया में कूद पड़े। लेकिन यह इतना आसान नहीं था। दरिया बहुत बड़ा और गहरा था। कहानियाँ न होने से एकदम ठण्डा भी पड़ गया था। फिर भी कुछ तैर कर कहानियाँ ले आए। बहुत से डूब गए। कहानियाँ आईं तो गाँव में रोशनी हुई और अँधेरा भी। सूरज निकलना शुरू हुआ। चाँद-तारे निकले। जवान लोगों ने एक-दूसरे के कँधे पर सिर टिका कर रात भर तारे गिनना शुरू किया। उगता सूरज देखा।

लोग हँसे और रोए। मोहब्बत की और नाराज़ भी हुए।

लेकिन इन कहानियों की भी उम्र इंसानों की तरह होती हैं। कुछ जल्दी मर जाती हैं। कुछ देर तक ज़िन्दा रहती हैं। फिर गाँव धुँधले झुटपुटे में फँस जाता। फिर कुछ लोग कहानियाँ लाने दरिया पार जाते हैं।

कभी-कभी पानी बढ़ जाता है। अचानक पानी बढ़ जाता है और तैराकी के वे सारे दाँव-पेंच, तौर-तरीके फेल हो जाते हैं। लोग किनारे पहुँचने को हाथ-पाँव मारते हैं। एक किनारे कहानियाँ होती हैं, दूसरे किनारे मुर्दा होता गाँव। कभी कुछ लोग भँवर में डूब जाते हैं कभी तैर आते हैं।

लेकिन कहानियाँ नदी पार ही रहती हैं। जिस किसी को कहानियाँ लानी हों, नदी पार करनी ही पड़ती है। भीगना पड़ता है। हाथ-पाँव मारने पड़ते हैं। डूब जाना भी पड़ता है।

बेहोश टिड्डे और ततैया के बच्चों की कहानी

कालू राम शर्मा
फोटोः कालू राम शर्मा
चित्रः तापोशी घोषाल

शाम हो गई थी। दिन भर के काम के बाद मैं बगीचे में टहलने निकला। वहाँ तरह-तरह के पेड़, फूल, छितरी घास और चिड़ियों की चहचहाहट थी!

अचानक घास के बीच सूखी ज़मीन पर एक काले चमकीले कीड़े की हरकत पर मेरा ध्यान अटक गया। छेड़े बिना मैं उसे देखने लगा। वो बावला हुए जा रहा था। अपने मुँह और टाँगों से लगातार गड्ढा खोदे जा रहा था। निकली मिट्टी को आसपास फैलाए जा रहा था। बीच-बीच में वह उड़ान भरता, लौटकर इधर-उधर मण्डराता। और फिर से खुदाई में जुट जाता।

मैंने अगले तीन दिन इस कीट के साथ बिताए। चुपचाप उसे और उसकी हरकतों को निहारता रहा। यह ततैया थी जिसे हम ग्रेट ब्लैक वास्प के नाम से भी जानते हैं। बिल बनाने का काम मादा ततैया करती है। अपने बच्चों के लिए। अण्डों से लार्वा निकलेंगे। यह ततैया उनके लिए ही बिल बना रही थी। फिर उसे उनके खाने के लिए टिड्डे की व्यवस्था करेगी। यह ततैया खुद फूलों का रस पीती है। यानी शाकाहारी है।

ततैया ने बिल बनाने के लिए बेहद सुरक्षित जगह चुनी थी। इससे पहले उसने चप्पे-चप्पे का मुआयना किया। मैंने

यह भी देखा कि जिस जगह पर ततैया गड्ढा खोद रही थी वहाँ वो अकेली नहीं थी। तीन-चार ततैयाँ अपने-अपने गड्ढे खोद रही थीं। एक-दूसरे के काम में दखल दिए बिना। पर अगर कोई ततैया दूसरे के गड्ढे की तरफ जाती तो वो आक्रामक हो जातीं। इस दौरान कोई चींटी या गिंजाई गड्ढे के आसपास आने की कोशिश करती तो उस पर झपट्टा मारकर भगा देतीं।

गड्ढा थोड़ा तिरछा था। खोदने से निकली भुरभुरी मिट्टी को फैलाकर मादा ततैया ने उसे साफ-सुथरे रन वे की तरह बनाया।

इसी रनवे से वो टिड्डे को बिल में लाएगी। टिड्डे को लाने से पहले ततैया ने अन्दर घुसकर मुआयना किया। अपने मुँह से व टाँगों से गड्ढे को महसूसा। रन वे पर दौड़ लगाई और चल दी टिड्डे की खोज में। मादा ततैया का यह बिल अब उसके मौसेरे भाई-बहन टिड्डे की कब्रगाह बनेगी।

मादा ततैया आसपास के पौधों पर मण्डराई। वहाँ वो किसी खास किस्म के टिड्डे की तलाश में थी। लगता था पहले से ही ततैया ने देख रखा होगा कि कहाँ उसे टिड्डे मिलेंगे। तलाश पूरी होते ही उसने उसे अपने कब्ज़े में लिया। तीन बार दंश चुभोया। पहला उसकी गर्दन में और दो बार उसकी छाती पर। टिड्डे को जैसे लकवा मार गया था। अचेत टिड्डे को ततैया अपने मज़बूत मुखाँगों व टाँगों में जकड़ गड्ढे तक ले आई।

बेहोश टिड्डे का उसने एक बार फिर मुआयना किया। गड्ढे तक दौड़ लगाई और पलटकर टिड्डे तक आई। उसे मुँह में दबाया और खींचकर गड्ढे की ओर ले जाने लगी। इस काम को उसने बड़ी फुर्ती से किया। और वो भी उल्टे चलते हुए।

मैंने पाया कि ग्रेट ब्लैक वास्प की एक ही किस्म अपने बच्चों के लिए दो तरह के टिड्डों को लाती है। वैसे अध्ययनों से पता चला है कि ये चार-पाँच प्रकार के टिड्डों को निशाना बनाती हैं। गड्ढे के भीतर बेहोश ततैया टिड्डे की पहली और दूसरी टाँगों के बीच नीचे की ओर अण्डा देती है। वह एक बिल में कई टिड्डों को लाकर उन पर एक-एक अण्डा देती है। बिल की जगह चुनने से टिड्डे को लाने तक में खासी ऊर्जा लगती है। इस दौरान मादा ततैया बिलकुल नहीं सुस्ताती है।

अण्डों से लार्वा निकलेंगे जो बेहोश टिड्डे को चाव से खाएँगे। पनपेंगे। अण्डे देने के बाद वो बिल को मिट्टी से बन्द कर देती है। और उड़ जाती है। वह पलटकर नहीं आती। कुछ दिनों के बाद गड्ढे में से बच्चे बाहर निकलेंगे और वो भी फूलों का रस चूसेंगे। अपना शानदार सफर शुरू करेंगे। और इस दुनिया में अपने हिस्से का जीवन जिएँगे। हमें थोड़ी देर उनके संसार में चले जाने का मौका मिलेगा।

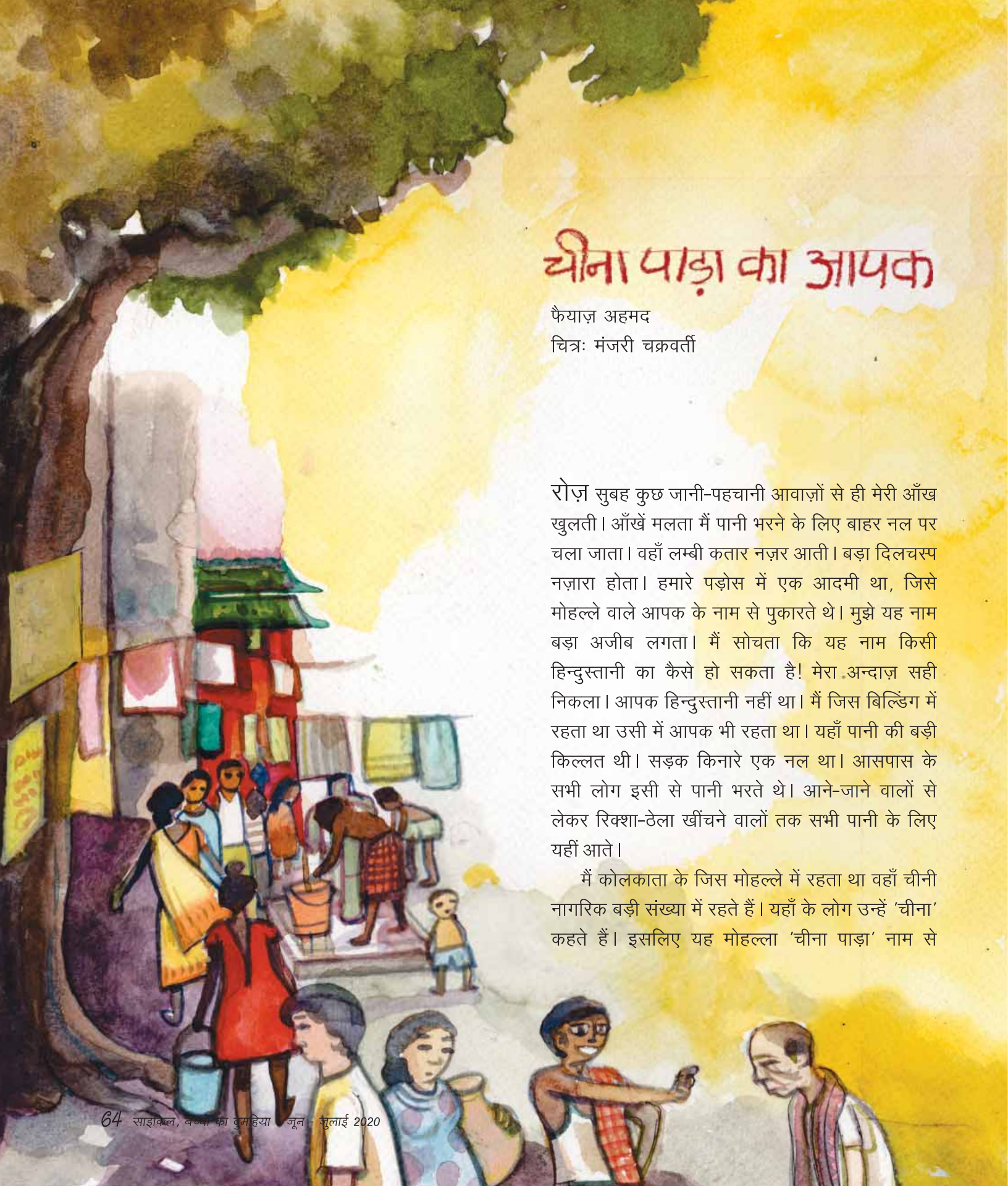

चीना पाड़ा का आपक

फैयाज़ अहमद

चित्रः मंजरी चक्रवर्ती

रोज़ सुबह कुछ जानी-पहचानी आवाज़ों से ही मेरी आँख खुलती। आँखें मलता मैं पानी भरने के लिए बाहर नल पर चला जाता। वहाँ लम्बी कतार नज़र आती। बड़ा दिलचस्प नज़ारा होता। हमारे पड़ोस में एक आदमी था, जिसे मोहल्ले वाले आपक के नाम से पुकारते थे। मुझे यह नाम बड़ा अजीब लगता। मैं सोचता कि यह नाम किसी हिन्दुस्तानी का कैसे हो सकता है! मेरा अन्दाज़ सही निकला। आपक हिन्दुस्तानी नहीं था। मैं जिस बिल्डिंग में रहता था उसी में आपक भी रहता था। यहाँ पानी की बड़ी किल्लत थी। सड़क किनारे एक नल था। आसपास के सभी लोग इसी से पानी भरते थे। आने-जाने वालों से लेकर रिक्शा-ठेला खींचने वालों तक सभी पानी के लिए यहीं आते।

मैं कोलकाता के जिस मोहल्ले में रहता था वहाँ चीनी नागरिक बड़ी संख्या में रहते हैं। यहाँ के लोग उन्हें 'चीना' कहते हैं। इसलिए यह मोहल्ला 'चीना पाड़ा' नाम से

मशहूर है। मोहल्ले में उनके इस्तेमाल की तकरीबन तमाम चीज़ें मुहैया हैं। उनके घर, होटल, दुकानें और एक स्कूल भी है। उनका एक मन्दिर भी था जिसे मोहल्ले के कुछ व्यापारियों की मिली-भगत से छत पर ले जाया गया था। नीचे एक गोदाम बना दिया गया। अजीब बात थी कि किसी इबादत की जगह को गोदाम बना दिया गया पर कोई हंगामा नहीं हुआ। उस वक्त मेरे लिए यह कोई खास मायने नहीं रखता था। लेकिन आज यह गैर-मामूली बात लगती है।

आपक एक चीनी नागरिक था। वो इसी मन्दिर की सीढ़ियों के नीचे रहता था। सुबह-सुबह जब आपक कहता, "तू चीना, तेरा बाप चीना, तेरा खानदान चीना!" तो उसकी भौंएँ सिकुड़ी होतीं। यह सब तबारक अली की छेड़छाड़ से शुरू होता। सारा दिन यह तकरार मेरे भीतर बनी रहती। तबारक अली उसी मोहल्ले में रहता था। वो तो एक बार "ऐ आपक! तू साला चीना है!" बोलकर चुप हो जाता। पर दोनों के बीच नोक-झोंक और तू-तू, मैं-मैं शुरू हो जाती। यह रोज़ की बात थी।

"ऐ आपक! तू साला चीना है!" आपक के लिए किसी गाली से कम नहीं था। इसकी टीस उसके चेहरे पर साफ दिखाई देती। वह तिलमिला जाता। पास खड़े लोग मज़े लेकर तमाशा देखते। वह गालियाँ बकता नल से पानी भरता और अपनी बिल्डिंग में घुस जाता। मन्दिर में जाने वाले मुख्य द्वार पर ही उसने अपना घर बना लिया था। घर क्या कहेंगे! छत की ओर जा रही सीढ़ियों के नीचे की खाली जगह ही उसका घर थी। जब गालियाँ देते-देते थक जाता तो एल्युमीनियम के तार उठाता और पिंजरे बनाने लगता। जैसे, इसी के ज़रिए अपने दिल का गुबार निकाल रहा हो। उसका यही काम था - मन्दिर की रखवाली और पिंजरे बनाना। कभी-कभार पूजा-पाठ करने आए लोग उसे कुछ-न-कुछ दे जाते। लेकिन वह किसी से माँगता नहीं था।

उसके बनाए पिंजरे बेहद खूबसूरत होते। लोग मुँह-माँगी कीमत चुकाकर ले जाते। लेकिन वह पैसा कमाना नहीं चाहता था। उसकी ज़रूरतें पूरी हो जाएँ, बस इतना काफी था। यहाँ उसका कोई रिश्तेदार भी नहीं था। उसका पूरा परिवार चीन में था। माँ, बाप, भाई, बहन, बीबी, बच्चे, सगे-सम्बन्धी सभी। वह किसी से मिल नहीं सकता था, न कोई उससे मिलने आता था।

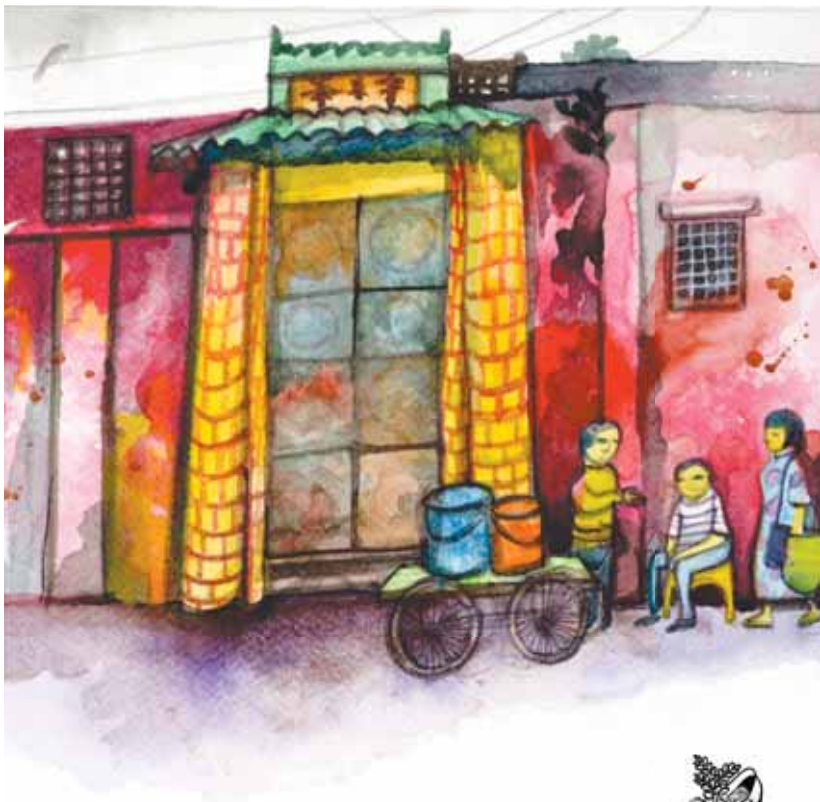

आपक एक युद्ध का कैदी था। 1962 में भारत-चीन युद्ध हुआ। हर युद्ध की तरह इसमें भी बेशुमार जानें गईं। दोनों देशों का अरबों-खरबों का नुकसान हुआ। कुछ सैनिक कैदी बना लिए गए। चीनी सैनिक के रूप में लड़ते हुए आपक भी भारतीय सैनिकों द्वारा कैद कर लिया गया था। बाद में दोनों देशों के बीच कैदियों का तबादला हुआ। पर आपक किसी वजह से अपने देश जा नहीं सका। आपक की तरह और भी कई सैनिक थे जो कोलकाता में ही रह गए। चीनी सरकार की तरफ से उन्हें वापस ले जाने की कोई पहल भी नहीं हुई। या अगर हुई भी हो तो इसका फायदा आपक जैसे सैनिकों को नहीं मिल पाया।

तबारक के छेड़ने पर आपक किसको गालियाँ देता था? अपनी सरकार को, अपने देशवासियों को या अपने परिवार वालों को? आपक था तो आज़ाद लेकिन कोलकाता से बाहर नहीं जा सकता था। पिछले तीस सालों से वह इसी तरह से एल्युमीनियम की तार बाज़ार से खरीदता और दिन-भर बैठा पिंजरे बनाता रहता। जब थक जाता तो दीवार से टेक लगा कर एक झपकी ले लेता। यही उस का रोज़ का काम था।

आपक को देखकर मुझे वे भारतीय आपक याद आते हैं जो चीन के किसी शहर के किसी मोहल्ले के किसी नल से पानी भर रहे होंगे और कोई चीनी तबारक उन्हें छेड़ता होगा तो उनकी भी भौंएँ सिकुड़ जाती होंगी, "तू इंडियन, तेरा बाप इंडियन तेरा पूरा खानदान इंडियन!"

ओस

महेश वर्मा
चित्रः राजकुमारी

तारों में छोड़कर आए थे
हम अपना दुख
यहाँ इस जगह लेटकर
इसलिए देखते रहते हैं तारे

गिरती रहती है
ओस

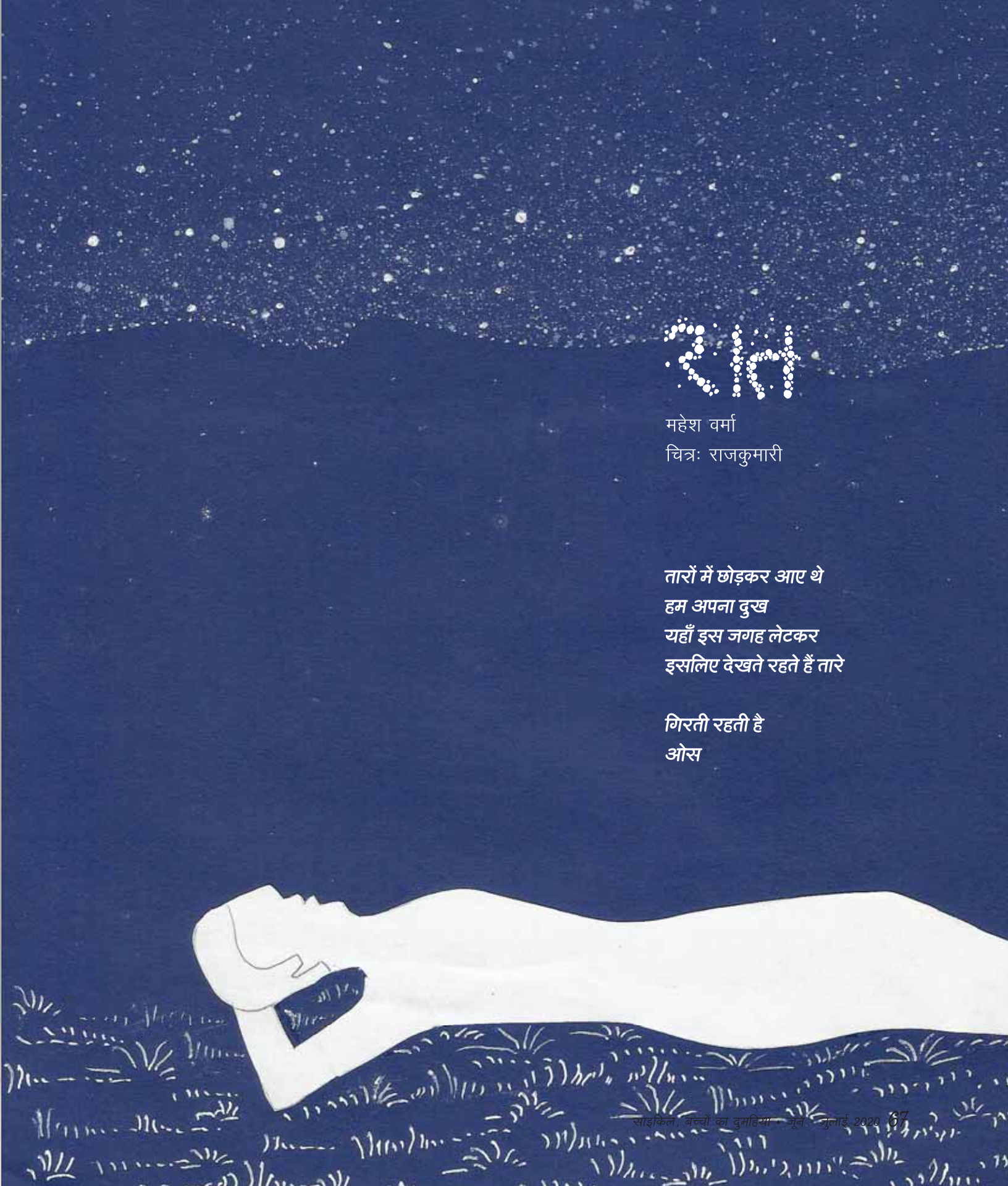

आर. एन. आई. नम्बर - DELHIN/2018/76181 द्विमासिक

बिल्ली तक न आती

नवीन सागर
चित्रः एलन शॉ

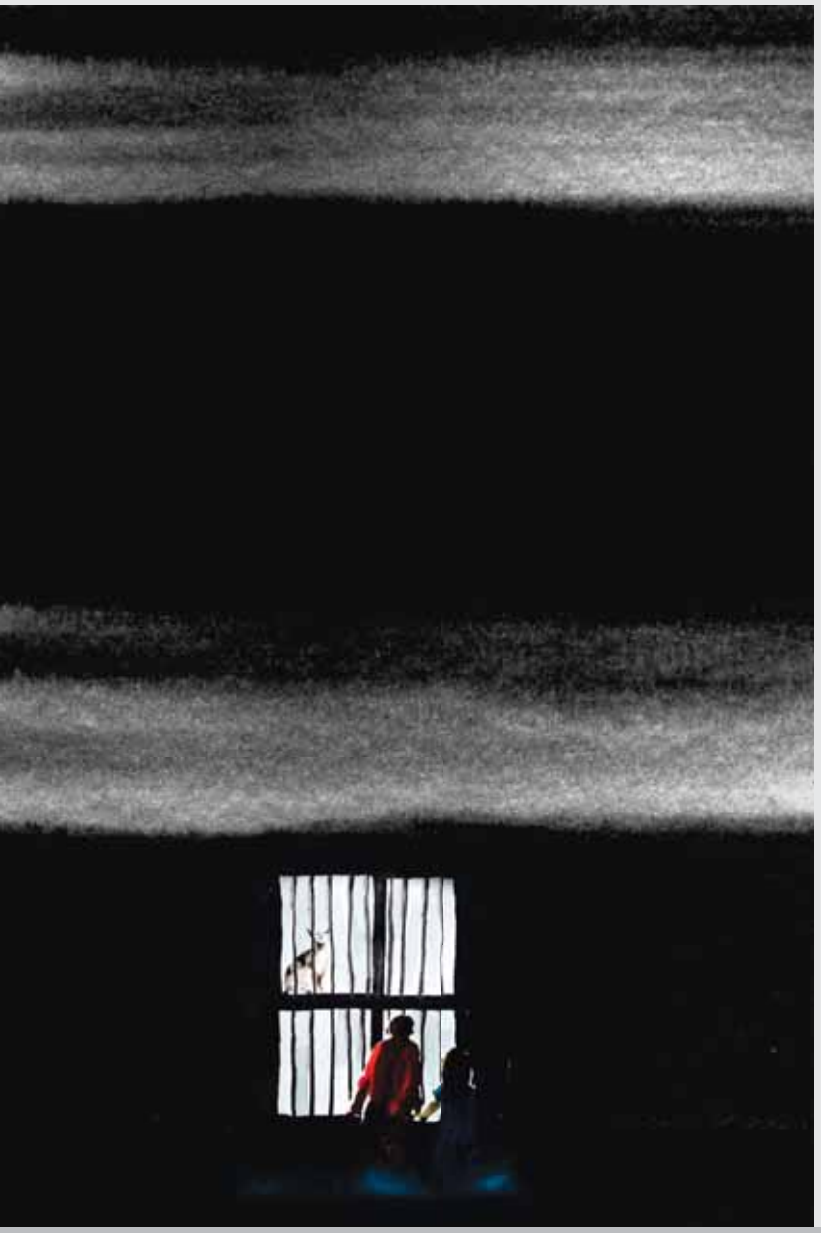

अम्मा खेलें कहाँ बताओ!
गलियाँ सूनी द्वार बन्द हैं
जिधर जहाँ भी जाओ।

मिले न कोई संगी साथी
दिखे न घोड़ा हाथी
कैसी बस्ती शाम हुई पर
हुई दिया ना बाती

आसमान सूना
पतंग सीलन में दीमक खाती
जालीदार बना दी खिड़की
बिल्ली तक ना आती
पापाजी गुमसुम बैठे हैं
बन्द किए हैं द्वार

दादा दादी चाचा चाची
आँगन बुआ डाल पर झूला
सुआ कबूतर चिड़िया रानी
फूल पत्तियाँ बहता पानी
यह पूरा संसार

कहाँ है अम्मा कहाँ बताओ
गलियाँ सूनी द्वार बन्द हैं
जिधर जहाँ भी जाओ

मुद्रक तथा प्रकाशक संजीव कुमार द्वारा
तक्षशिला पब्लिकेशन - तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी की इकाई के लिए मल्टी कलर सर्विसेज़, शेड नम्बर 92,
डी.एस.आई.डी.सी. ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़ 1, नई दिल्ली 110020 से मुद्रित एवं सी-404,
बेसमेंट, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली 110024 से प्रकाशित
सम्पादक - सुशील शुक्ल